# बुद्ध-हृदय

लेखक—

स्वामी सत्यभक्त

# बुद्ध हृदय

अर्थात्

## (म. बुद्ध की डायरी)

प्रणेता

स्वामी सत्यभक्त

संस्थापक सत्यसमाज

प्रकाशक

सत्याश्रम वर्धा, (सी. पी.)

जुलाई १९४१

मूल्य छः आना

प्रकाशक—

रघुवीरशरण दिवाकर

बी. ए. एल. एल. बी.

मुद्रक,

मै ने ज र

सत्येश्वर प्रिंटिंग प्रेस

सत्याश्रम, वर्धा. ( सी. पी. )

# अध्याय सूची

# दो शब्द

यह सच है कि महात्मा बुद्ध के 'महानिर्वाण' को आज ढाई हजार वर्ष से भी अधिक हो गए लेकिन इस से ज्यादह सच यह है कि वे आज भी दुनिया में हैं, वे ज़िंदा हैं और जब तक यह मनुष्यसमाज है वे ज़िंदा रहेंगे, अपनी जिंदगी से इसे भी ज़िंदा और तरोताज़ा बनाते रहेंगे।

यह छोटीसी पुस्तक न तो महात्मा बुद्ध का पूरा जीवन चरित्र है न बौद्ध धर्म का विशेष परिचय, यह तो एक महान जीवन यात्री की यात्रा के कुछ संस्मरणों का संग्रह है। एक राजकुमार बुद्धत्व के शिखर तक चढ़ता है और अपने अनुभव डायरी में लिखता जाता है—इसी रंग और ढंगपर यह पुस्तक लिखी गई है।

आज दुनिया में जो लोग ईश्वर की तरह पूजे जाते हैं उन्हें भी अपने जीवन में मामूली लोगों के समान अनेक कष्ट उठाना पड़े हैं, उनका भी क्रम क्रम से विकास हुआ है, उनकी संस्थाओं ने धीरे धीरे रंग पकड़ा है, विरोध निंदा उपेक्षा आदि आघातों में से बड़े धैर्य के साथ उन्हें पार होना पड़ा है। परिचितों अनुयायियों भक्तों और शिष्यों के स्वार्थ और अज्ञान के साथ उन्हें संघर्ष करना पड़ा है. तब उन्हें सफलता मिली है। इस सफलता के लिये अनंत धैर्य, असीम साहस, पूर्ण विवेक और विचारकता, पूरा त्याग, गहरा अनुभव, अथक उद्योग, निरन्तर सतर्कता, चतुर्मुख दृष्टि, अडग श्रद्धा, आत्मविश्वास, विश्वहितैषिता, निरपेक्षता और समभाव की

ज़रूरत हुई है। महात्मा बुद्ध की गणना ऐसे ही लोगों में है और उनमें इनका स्थान काफ़ी ऊँचा है।

इस पुस्तक में जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है वे बौद्ध साहित्य में से ज्यों की त्यों ली गई हैं अर्थात् घटनाएं कल्पित नहीं हैं, उन घटनाओं को लेकर म. बुद्ध के मन का चित्रण किया गया है। यद्यपि म. बुद्ध को एक मनुष्य मानकर उनके मनोभावों का चित्रण किया गया है फिर भी इन बातों का पूरा ख़याल रक्खा गया है कि हर एक चित्रण म. बुद्ध के व्यक्तित्व के अनुरूप हो, और उन घटनाओं और आगे पीछे की घटनाओं के साथ उनका पूरा सामञ्जस्य हो; इतना ही नहीं किन्तु कुछ घटनाओं में सुसंगतता आदि बढ़ाने की भी चेष्टा की गई है। यह बात भिक्षुणी संघ की स्थापना, युवक साधुओं की जरूरत आदि के प्रकरणों में साफ़ दिखाई देगी।

महात्मा बुद्ध के मनोभावों का ऐसा सुन्दर चित्रण कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता और कोई करे भी तो उसमें ऐसी स्वाभाविकता और ऐसा सौन्दर्य नहीं आ सकता जितना इस पुस्तक में आया है। जिसके कन्धों पर एक नवीन और क्रान्तिकारी संस्था की ज़िम्मेदारी हो, जिसे क़दम क़दम पर विपत्ति विरोध उपेक्षा और निंदा का सामना करना पड़ा हो, जिसने पुस्तकों का ही नहीं, मानवहृदय का गंभीर अध्ययन किया हो जिस के जीवन में चारों तरफ़ कठिनाइयों असुविधाओं और संकटों के होते हुए भी एक क्षण के लिए भी निराशा ने स्थान न लिया हो, वही महात्मा बुद्ध के मनोभावों को ठीक ठीक समझ सकता है और बारीकी के साथ उनका चित्रण कर सकता है। श्री० सत्यभक्तजी का जीवन ऐसा

ही एक महान जीवन है। सत्यसमाज की जिम्मेदारी आपके कंधों पर है, शुरू से ही परिचित और अपरिचित क्षेत्रों से विरोधों का आपने असीम धैर्य और साहस के साथ सामना किया है और आगे कदम बढ़ाया है और बढ़ा रहे हैं, अपना सर्वस्व आप इसी कर्तव्य में अर्पण कर चुके हैं और अब तो आप के जीवन की एक मात्र साधना और एक मात्र ध्येय सत्यसमाज अर्थात उसके सिद्धान्तों के प्रचारद्वारा मानवसमाज का कल्याण ही है। आप के अनुभव गहरे हैं और विचारकता बहुत ऊँचे पैमाने की है। आपका सर्वधर्मसमभाव, सर्वजाति समभाव और सामाजिक क्रान्ति का संदेश अपने ढंग का एक ही है। आपका जीवन अत्यन्त पवित्र उच्च और महान है, सभीके लिए अनुकरणीय है।

श्री० सत्यभक्तजी ने इस पुस्तक द्वारा महात्मा बुद्ध की महत्ता को तो प्रमाणित किया ही है लेकिन इससे आपके जीवन की झाँकी भी मिलती है। पुस्तक पढ़ने के लिए ही नहीं; मनन करने के लिए है।आशा है पाठक इस का पूरा पूरा उपयोग करेंगे।

**रघुवीरशरण दिवाकर** बी. ए., एल एल. बी.
सम्पादक —'नई दुनिया'

# म० बुद्ध की सेवामें

महात्मन्

ढाई हज़ार वर्ष की कालिक दूरी के रहने पर भी जो मैं आपकी डायरी के पत्र पढ़ सका हूं उसका मुख्य कारण यह है कि आपकी कथा आपकी कथा नहीं है किन्तु दुनियाके महामानवों की अमर कथा है जो न कभी पुरानी होती है न कभी दूर।

आप दुनिया की भलाई के लिये सर्वस्व देने वाले, मनुष्य को अन्य कल्पनाओंसे अलग रखकर कल्याण का मार्ग बताने वाले महामानव हैं पर मनुष्यों ने या तो द्वेषवश आप से घृणा की या अज्ञानवश आपको भुलाया या मोहवश आप को कौड़ियों से लाद दिया। महामानव के रूप में आप को समझने वाले ढूँढने पर भी दुर्लभ हैं। लोग आपको ठीक ठीक समझे, नर से नारायण बनने की कला सीखें, इसलिये आपकी डायरी के पत्र दुनिया में बिखेर रहा हूं।

काल के थपाठे में कभी कभी तथ्य क्षत विक्षत हो जाता है पर सत्य काल की शक्ति के परे है। काल उसका पुजारी है, वह सत्यको नये नये ढंग से पूजता है पर क्षत विक्षत नहीं कर पाता। इन पन्नों में तथ्य भलेही कुछ क्षत विक्षत हुआ हो पर सत्य अक्षुण्ण है इस बात को दुनिया समझे या न समझे पर आप समझते हैं, इस लिये आप की सेवा मे ये पन्ने समर्पित हैं।

आपका अनुचर बन्धु

**दरबारीलाल सत्यभक्त**

# बुद्ध हृदय

अर्थात्

## महात्मा बुद्ध की डायरी

( १ )

मुझे देखकर कौन कहेगा कि मैं दुःखी हूँ। राजभवन है वैभव है सुन्दर पत्नी है पुत्र है, सब आज्ञाकारी हैं। फिर भी मैं असन्तुष्ट हूँ। सोचता हूं क्या मेरे जीवन की यही उपयोगिता है ? क्या मैं महान हूं ? सैकड़ों नौकर चाकर हाथ जोड़ते हैं क्या ये मुझे हाथ जोड़ते हैं ? या मेरे वैभव को ? अगर मैं राजकुल में पैदा न हुआ होता मेरे पास इतना वैभव न होता तो इन में से कौन हाथ जोड़ता। इन के हृदयों में मेरी भक्ति नहीं है ये वैभव के गुलाम हैं और मैं इन गुलामों में महान हूं। बाहरी महत्ता।

आज उद्यान को जा रहा था। एक संन्यासी मिला। उस के पास कुछ नहीं था भिक्षा से पेट भरता था पर मेरे वैभव की उसे पर्वाह नहीं थी। वह मेरे दास दासियों से भी गरीब था पर मुझे सिर नहीं झुकाया। मेरे देखने पर इस तरह मुसकरा कर चला गया

मानों मुझ से महान है। आज मुझे सब सिर झुकाते हैं कल मेरी जवानी चली जाय वैभव चला जाय या कोई सम्राट् मेरे राज्यको विजय करले तो मुझे कौन सिर झुकायगा। इच्छा न रहते हुए भी मुझे सिर झुकाना पड़ेगा। पर उस संन्यासी को उस सम्राट् की भी क्या पर्वाह हो सकती है? वह किसी के भी आगे अपनी इच्छा के बिना नहीं झुक सकता। भले ही वह अपने गुरु के आगे या अपने से महान किसी योगी के आगे झुके, पर यह तो भक्ति से झुकना हुआ, भक्ति में तो अपनी इच्छा प्रधान है स्वतन्त्रता है। वैभव और शक्ति के आगे झुकने में वह स्वतन्त्रता, वह गौरव कहाँ?

इस प्रकार इस राजपद में भी मैं अत्यन्त क्षुद्र हूं। अपनी क्षुद्रता को भुलाने के लिये दास दासी के रूप में मिट्टी के चलते फिरते पुतले मैंने खड़े कर लिये हैं, इस प्रकार आत्मवञ्चना कर रहा हूं। जो आत्म-वञ्चक है वह जग-वञ्चक है ऐसा वञ्चनामय जीवन भी क्या कोई जीवन है।

मेरी इस वेदना को कौन समझेगा? अगर मैं यहाँ से भाग निकलूं तो दुनिया मुझे या तो लोकोत्तर त्यागी समझेगी या पागल, पर मेरी वेदना का मर्म किसी के ध्यान में न आयगा। ओह, आज मैं सिद्धार्थ कहला कर भी कैसा असिद्धार्थ हूं।

( २ )

दुनिया कितनी दुखी है इस बात का ज्यों ज्यों अनुभव होता जा रहा है त्यों त्यों बेचैन हो रहा हूं। मृत्यु जरा रोग आदि प्राकृतिक कष्ट तो हैं ही, साथ ही प्राणी प्राणी को, मनुष्य मनुष्य को जो

अनेक तरह से भक्षण कर रहा है यह असह्य है। बल के नामपर, अधिकार के नामपर, जाति और कुल के नामपर, यहाँ तक कि धर्म के नामपर अन्याय अत्याचारों का तांडव मचा हुआ है। इस प्रकार जब चारों तरफ दावानल धाँय धाँय कर रहा है तब मैं एक वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ अपने को सुरक्षित समझूँ और तमाशा देखूं यह कैसे हो सकता है !

पापी मार कहता है--सिद्धार्थ, तुम राजा बनो सम्राट् बनो अपने वैभव और अधिकार से जगत् को सुखी बनाओ। कैसी मूर्खता है ! अधिकार और वैभव के लिये जितना दुःख देना पड़ेगा उतना दूर करना ही तो कठिन है फिर दुनिया के अन्य दुःखों की बात तो दूर है। समाज में फैली हुई बीमारियाँ, मानव प्रकृतिके रोग क्या अधिकार या वैभव से दूर हो सकते हैं ?

पापी मार कहता है--सिद्धार्थ, जब तुम इसी जीवन में सफल नहीं हो रहे हो तब प्रव्रज्या के जीवन में क्या सफल हो सकोगे ? वहाँ तुम दूसरों के क्या काम आओगे ? अपना पेट भी न भर सकोगे। संसार से भाग कर तुम कायर और दीन कहलाओगे।

पर मैं पापी मार की चोटें सहन करता हूं। मैं कहता हूं--दुनिया मुझे कायर कहे दीन कहे मुझे इस की पर्वाह नहीं है। मैं अपने मन का सम्राट बनूंगा। मुझे दुनिया का पेट नहीं भरना है, पेट तो वह भरती ही है, जानवर भी पेट भरते हैं मैं तो दुनिया को मनुष्य बनाना चाहता हूं, मनुष्यों में मनुष्यता लाना चाहता हूं, सत्य की खोज करके दुनिया को देना चाहता हूं, इसके लिये धन वैभव अधिकार की जरूरत नहीं है।

( ४ )

अगर दुनिया मुझे न समझेगी तो भले ही न समझे। दुनिया ऐसी क्या समझदार है जिसके समझने की पर्वाह की जाय। आज तक उसने किसी को कब समझा? जीते जी तो समझा नहीं, मरने पर या तो भुला दिया या आसमान पर इतने ऊँचे पहुँचा दिया कि वह देवता बनगया, मनुष्य को उसने मनुष्य कभी न समझा। या तो पशु समझा या देव। वह अपनी आदत से लाचार है इसकी चिन्ता मैं क्यों करूं? मैं अपना काम करूंगा दुनिया अपना काम करेगी।

मेरी बातें सुनकर पापी मार भाग जाता है आज भी भागा।

( ३ )

पापी मार के साथ आज जैसा युद्ध करना पड़ा वैसा कभी नहीं करना पड़ा और शायद न कभी करना पड़ेगा। राहुल और राहुलमाता, माता पिता आदि के प्रेमाकर्षण पर कैसे विजय पाऊंगा, इस भय से चोरी से घर छोड़ा। घर छोड़ते समय ऐसा मालूम हुआ कि एक प्रासाद पर से अथाह समुद्र कूद में रहा हूं।

ओह! प्रेम का बन्धन भी कितना प्रबल होता है। आधीरात को घर से निकलते समय भी यह इच्छा हुई कि एक बार राहुल और राहुलमाता को देखता चलूं। देहली पर खडे होकर मैंने दोनों को देखा। सोचा पुत्रका चुम्बन लूंगा पर देवी के जागजाने के डर से ऐसा न कर सका।

इस अवसर का लाभ पापी मार ने खूब उठाया। वह बोला-सिद्धार्थ, तुम यह क्या पागलपन कर रहे हो, अनुरक्ता पत्नी

पर भी तुम्हें दया नहीं है ? वह तुम्हारी अर्धाङ्गिनी है आधे अंग को छोड़ कर जाने का तुम्हें कोई हक नहीं है। मैंने कहा—मैं जगत के लिये पूरे अंग का उत्सर्ग कर रहा हूं तब आधे अंग का उत्सर्ग हो ही जायगा।

मार पापी—यदि ऐसा है तो पत्नी को भी साथ लेजाओ।

मैं—जिस अंग का जिस जगह जैसा उपयोग हो सकता है उसका उसी तरह उपयोग करना चाहिये। साधना के लिये मेरे पुरुष अंग की ही उपयोगिता है। सिद्ध बुद्ध होने पर-स्थान जमा-लेने पर-मैं पत्नी और पुत्र को भी लेने आऊंगा। अथवा अगर पत्नी की उपयोगिता घर में ही अधिक होगी तो वहीं रहने दूंगा।

मार पापी—क्या पत्नी साधना नहीं करसकती ? सिद्धार्थ, क्या तुम यह समझते हो कि सारा श्रेय पुरुषों के हाथ में है ? नारी क्या बिलकुल अबला है। यदि ऐसा है तो तुम जगत की सेवा नहीं कर सकते।

मैं—छलने के लिये ज्ञानियों सरीखी बातें करने-वाले मार पापी, मैं तुझे पहिचानता हूं। तू मुझे साधना से रोकना चाहता है पर मैं तेरी बातें अच्छी तरह जानता हूं। तू नारी का पक्ष क्या लेगा विश्वहित का मार्ग मैं जानता हूं। राहुलमाता का त्याग मैं विश्वहित के लिये कर रहा हूं। नारी भी साधना कर सकती है राहुलमाता भी साधना करेगी। मनुष्य निर्माण का कार्य भी साधना है जो कि नारी करती है उसे वही करने देना चाहता हूं। जैसे चलने के लिये एक पैर आगे बढ़ाया जाता है दूसरा पैर जमा रहता है-दोनों पैरों को एक साथ नहीं बढ़ाया जाता उसी प्रकार मैं आगे

बढ़ रहा हूं। जब तक एक पैर आगे जम न जाय, तब तक दूसरा पैर पीछे ही जमा रहेगा।

पापी मार—फिर भी मैं कहता हूं सिद्धार्थ, जन सेवा करने के जो साधन तुम घर में पासकोगे वह बन में नहीं पा सकोगे।

मैं—अरे पापी, घर में मैं चार आदमियों को कुछ दे सकूंगा पर गृहत्यागी बनकर जगत को दे सकूंगा।

मार पापी फिर हार कर भाग गया। पर भाग कर भी वह कितना सताता रहा इसे कभी न भूलूंगा।

श्रेय में भी कितने विघ्न आते हैं। शत्रु की अपेक्षा मित्र ही अधिक बाधक हो जाते हैं।

रात भर कन्थक [ राजकुमार सिद्धार्थ के प्रधान घोड़े का नाम ] की पीठ पर चढ़कर जब मैं अनोमा नदी के तट तक आया, एक ही रात में तीन राज्यों की सीमाएँ पार कीं इसलिये कन्थक के प्राण निकल गये, तब छन्दक खेद-खिन्न होकर आँसू बहाने लगा और जब मैंने प्रव्रजित होने की बात कही तब तो चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा। बोला मैं भी दीक्षित होऊंगा। उस बेचारे को क्या मालूम कि मैं कैसे बीहड़ बन में प्रवेश कर रहा हूं जहां पथ का पता ही नहीं लगने पाता न दिशा का भी ज्ञान होने पाता है। वह तो सिर के बाल भी नहीं काटने देता था। बोला—छुरा ही नहीं है। तब मैंने तलवार से ही अपने बाल काट डाले। जमीन में पड़े हुए मेरे बालों को देख कर वह कितना रोया मानों कोई माँ अपने मृतशिशु को देखकर रो रही हो। मुझे उसका मोह देखकर दया आ रही थी। और यह मार पापी कुछ

( ७ )

शोक भी पैदा कर देता था। पर मैंने किसी तरह अपने आँसुओं को रोक ही लिया। मार पापी भाग गया छन्दक को लौटा दिया।

कल तक मैं राजकुमार था आज अनिर्दिष्ट-पथ भिखारी हूं। अपने को मिट्टी में मिला दिया है। देखूँ अंकुर कब निकलता है।

( ४ )

मनुष्य वास्तव में अभी पशु है वह पशुबलके आगे झुकता है, त्याग तप और सेवा का उसके सामने कुछ मूल्य नहीं। अगर मैं तलवार उठाऊँ, स्त्रियों को विधवा बनाना शुरु कर दूं, बच्चों के बाप छीन लूं, बुड्ढों के बच्चे छीन लूं, तो वे ही लोग मेरे सामने सिर झुकायेंगे सोना चाँदी हीरा माणिक आदि की भेंट चढ़ायेंगे मुझे अपना रक्षक और अन्नदाता कहेंगे जिनके बेटा को भाइयों को और बापों को मैं तलवार के घाट उतारूंगा। और आज, जब मैं समस्त राज-वैभव त्याग कर,बिलकुल निरुपद्रव हो कर, सेवक बनकर जनता के सामने आया तो मुझे जनता ने खाने को क्या दिया? वही दिया जो मेरे यहाँ जानवर भी नहीं खासकते थे जिसे देखकर आँतें तक मुँह से निकलना चाहती हैं।

मार पापी कह रहा है—मार्ष, मैंने तुम से कहा था न, दुनिया को तुम्हारी, तुम्हारे त्याग की पर्वाह नहीं है उस की दृष्टि में जैसे सैकड़ों भिखारी भीख माँगते फिरते हैं वैसे तुम भी हो। तुम उसे इस तरह क्या देपाओगे? लातों के देवता बातों से नहीं मानते। अगर तुम राजा बनकर आओ तो देखो तुम्हारा कैसा स्वागत होता है तुम्हारी बातें किस तरह आदर से सुनी जाती हैं। तुम घर में तीन वर्ष के पुराने सुगन्धित चावलों का भोजन करते

थे, एक से एक बढ़कर रस पीते थे वह सब तुम्हें यहाँ भी मिलता अगर तुम राजा बनकर आते। आज तुम त्यागी बनकर आये, समझे होगे अब मैं राजाओं से भी बड़ा हो गया, पर दुनिया ने तुम्हें क्या समझा? सिर्फ एक भिखारी। भाई, भला चाहो तो अब लौट जाओ। मन में बैठा हुआ पापी मार मौके बेमौके ऐसी ही चोटें किया करता है पर मुझे नहीं जीत पाता पापी मारने जब मुझे ऐसे ताने मारे तब मैंने उससे कहा—

मूर्ख तू त्याग के रहस्य को क्या जाने। दुनिया पशुबल के वैभव के और अधिकार के आगे झुकती है, त्याग की, सेवा की कद्र नहीं करती यह तो उस की बीमारी है जिसे मैं दूर करना चाहता हूं। वैद्य अगर रोगी के रोग से घबरा जाय तो वह उस की चिकित्सा क्या करेगा। सन्निपात में रोगी वैद्य को गालियाँ भी देता है *लातें भी मारता है पर वैद्य इन बातों का विचार नहीं करता* वह उस की चिकित्सा करता है। मुझे उस की चिकित्सा का विचार करना है मूर्खता से किये गये अपमान या उपेक्षा पर ध्यान नहीं देना है। राजा बनकर मैं आदर पा सकता हूं पर अनन्त यश नहीं। वह यश जो अपने हृदय से निकलता है और जगत् की पर्वाह नहीं करता।

मेरी बातों से पापी निरुत्तर हो जाता है।

( ४ )

पीछे भी जाऊँ कहाँ आगे बढ़ना है कठिन।<br>
अन्धकार घन घोर है हुआ एक सा रातदिन॥

अभी तक सत्य नहीं पा सका। पांच वर्ष निकल गये पर विश्वसेवा

की कोई योजना न बन सकी। सोचा कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध आचार्यों के पास जाकर सत्य प्राप्त करूंगा पर वहाँ कुछ न पाया औ कुछ पाया वह निःसार था। आलारकालाम, उद्दक रामपुत्र बड़े बड़े आचार्य हैं पर योग के नाम पर कुछ व्यायाम सिखाने के सिवाय उनके पास कुछ न था। जगत को इस व्यायाम से क्या लाभ ? उनने मुझे आचार्य बनने को कहा था पर सत्य को पाये बिना आचार्य बनने से क्या लाभ? इसकी अपेक्षा राजा ही क्या बुरा था। कभी कभी चिन्ता होती है कि क्या मेरा जीवन व्यर्थ ही जायगा। मैं कितनी तपस्याएँ कर चुका हूं, रूक्ष से रूक्ष आहार ग्रहण कर चुका हूं, महीनों निराहार रह चुका हूं, मुर्दे के समान स्थिर पड़ा रहा हूं पर सत्य नहीं मिला। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि उसी समय दुनिया ने मुझे महान समझा। पाँच भिक्षु मुझे महाज्ञानी समझकर वर्षों मेरी झाड़ूबर्दारी करते रहे दुनिया मुझे पूजने को आती रही जब कि मैं दुनिया को कुछ नहीं देता था। दुनिया को यह एक बीमारी है कि वह निकम्मे लोगों को पूजती है। जो इसका पशुबल से दमन करता है दुनिया पर बोझ डालता है वही दुनिया का सम्राट् है, सन्त है, योगी है। उन भिक्षुओंको देखो न, जबतक मैं निकम्मा रहकर कष्ट-सहन करता रहा, सबके सब दासदासी की तरह मेरी सेवा करते रहे, मैंने उन्हें कुछ नहीं दिया पर सन्तुष्ट थे। और आज जब व्यर्थ का देहदंड छोड़ कर उन्हें कुछ देना चाहा समझाना चाहा तब सबके सब भाग गये। यद्यपि मैंने अभी सत्य नहीं पाया है पर अनेक असत्यों को पहिचान गया हूं और उनसे हट गया हूं अब मुझे सत्यके दर्शन होने में देर न लगेगी। पर मेरी इस मनाति

को उनने पतन समझा और भाग गये, अब साधारण जगत से क्या आशा की जाय ? वास्तव में यह उनका पतन है इसलिये जहां वे गये हैं उसे मैं ऋषिपतन कहूंगा । दुनिया आज इसी पतन के मार्ग पर जारही है, वह सत्यशिव सुन्दर से डर कर भागती है और असत्य अशिव असुन्दरसे डरकर भक्ति करती है । दुनिया मूर्ख है भीत है, समझ में नहीं आता कि इन पशुतुल्य मनुष्यों पर दया करूं या इन नृकीटोंसे घृणा ।

पापी मार कहता है—मार्ष, दुनिया तुम्हें न समझेगी वह तुम्हारी दयाके योग्य नहीं है वह दंड के योग्य है । घर लौट चलो राजदंड धारण करो दुनिया के सिर पर सवार हो जाओ दुनिया तुम्हें समझेगी ।

मैं कहता हूं—पापी मार, तू मुझे क्या सिखाता है ? दुनिया मुझे समझे या न समझे इसकी मुझे पर्वाह नहीं है । मैं असत्य का आश्रय लूं और दुनियां मुझे समझे इससे मुझे क्या लाभ ? जिसने अपने को भी नहीं समझ पाया उसको दुनियाने समझ भी लिया तो उसे क्या लाभ है । सामने वह चट्टान पड़ी है मैं उसे समझता हूं तू उसे समझता है जो यहां आते हैं सब उसे समझते हैं पर इससे उसे क्या लाभ? वह अपने को तो समझती ही नहीं है । जिसे दुनिया समझे किन्तु वह अपने को न समझे ऐसा पत्थर मैं नहीं बनना चाहता । मैं अपने को समझूंगा दुनिया के समझने न समझनेकी पर्वाह न करूंगा ।

मेरी बातों से मारपापी भाग गया है पर वह जहां चोट कर गया है वहां अब भी दर्द है ।

( ६ )

इन पिछली कई रात्रियों में बहुत विचारमग्न रहा। जिस सत्य को पाने के लिये घर द्वार छोड़ तपस्याएँ कीं उस सत्यके जब दर्शन हुये तब मैं चकित हो गया। उसके दर्शन से मेरा जीवन सफल हो गया।

पर क्या जीवन की सफलता इतने में ही है? मैं सत्यके दर्शन पाजाऊं, उसके आनंद में जीवन भर मस्त रहूं और अविद्या में डूबी हुई दुनियाँ को भूल जाऊं तो क्या मेरा जीवन सफल होगा? क्या समाज के भीतर एक मनुष्य इतना ऊंचा रह सकता है कि जहां दुनिया की नजर ही न पहुँचे। चारों तरफ़ जहां नरक बन गया हो, चीत्कार से कान फटे जाते हों दुर्गन्ध से नाक पकी जाती हो उस जगत के बीच अपनी छोटी सी फुलवाड़ी बनाकर फूलों की सुगंध लूं, दिव्य संगीत गाऊँ और इस प्रकार आनन्द में मस्त रहूँ तो क्या सम्भव है? समष्टि के उद्धार के बिना व्यक्ति का उद्धार कहाँ तक होगा। जगत में अगर पाप है तो उसका थोड़ा बहुत फल मुझे भी सहना पड़ेगा। जगत को उठाये बिना मैं कहाँ तक उठूंगा।

पर जगत को उठाऊँ कैसे? जगत क्या उठना चाहता है? क्या वह सच्चे रास्ते पर चलना चाहता है। जिस परम सत्यका मुझे दर्शन हुआ है उसका तेज क्या जगत सह सकेगा?

जगत अतिवाद का पुजारी है। अति को ही वह महान समझता है। उसी के सामने वह सिर झुकाता है। वह धन वैभव की अति करनेवाले सेठों की पूजा करेगा, अधिकार की अति

करनेवाले राजाओं की पूजा करेगा, देहदंड की अति करनेवाले तापसों की पूजा करेगा। वह अगम्यका पुजारी है, आश्चर्य का पुजारी है, भय का पुजारी है, निरर्थकता का पुजारी है, पर प्रेम का पुजारी नहीं है, सरलता का पुजारी नहीं है।

जगत के सारे अतिवाद दुःख देनेवाले हैं। एक ही रसकी अधिकता से भोजन स्वादिष्ट नहीं बनता केवल नमक ही नमक डालने से या केवल मिर्च ही मिर्च डालने से या गुड़ ही गुड़ डालने से भोजन स्वादिष्ट नहीं बनता। स्वादिष्टता के लिये मित मात्रा में सब की ज़रूरत है। जीवन के लिये भी यही बात है उसमें त्याग की ज़रूरत है। पर अनावश्यक देह दंड की नहीं, उस में भोग की ज़रूरत है पर इंद्रियों का गुलाम बनने की नहीं, मार्ग मध्यमें है, निरति में है। पर क्या जगत इस बात को समझ सकता है तब मैं जगत् को सत्य दर्शन कैसे कराऊँ।

एक और बाधा है जगत की दृष्टि बिलकुल उलटी है। जो ज़रूरी है उसे यह गैरज़रूरी समझता है जो गैरजरूरी है उसे ज़रूरी समझता है। जो ध्येय है उसे गौण बनाता है जिसका ध्येय से कुछ सम्बन्ध नहीं उसे मुख्य बनाता है। इस तरह जब उसकी नजर ही खराब है तब उसे दिखाऊँ क्या ?

मनुष्य सुख चाहता है दुःख से डरता है पर न तो सुख दुःख समझने की चेष्टा करता है न उसके कारण, जिन मनोविकारों से मनुष्य दुःखी होता है जगत को दुःखी करता है उन मनोविकारों को हटाने की उसे चिन्ता नहीं है। हमारे चारों तरफ़ जो दुःख के कारण भरे पड़े हैं उनको दूर करने की चिन्ता नहीं है। चिन्ता है

उसको इन बातों की कि स्वर्ग कहाँ है, कैसा है, वहाँ अप्सराएँ मिलती हैं कि नहीं, नरक कहाँ है, ईश्वर कहाँ है कैसा है, परलोक कहाँ है कैसा है। इस तरह की निरर्थक बातों में अपनी सिरपच्ची करता है। इन्हीं बातों को लेकर दलबन्दी करता है। लड़ता झगड़ता है, निन्दा करता है। फिर इसे कहता है धर्म। ऐसे पागल जगत को मैं क्या समझाऊँ कैसे समझाऊं। उसे तो दम्भ चाहिये। कोई आदमी परलोक आदि के नामपर उसको खुश करनेवाली कल्पनाएँ सुनाये, सर्वज्ञता का दम भर कर उसे ठगे तो दुनिया उसपर खुश है। परन्तु कोई सच्ची बात कहे, अज्ञेय को अज्ञेय कहे, सुख का सीधा और सरल रास्ता बताये तो यह पागल जगत उसे ही पागल कहेगा। वह तो चाहता है कोई उसे अन्धेरे में टटोलने का काम दे दे कि जिस से वहां मन की कल्पनाएँ करने को खूब जगह मिले। वह प्रकाश नहीं चाहता क्योंकि प्रकाश में कल्पनाओं को जगह नहीं है। प्रकाश के द्वारा परमित दिखता है पर ठीक दिखता है किन्तु मनुष्य को इससे संतोष कहां। वह अंधकार में रहकर अनन्त कल्पनाएं करना चाहता है। ऐसे जगत को मैं प्रकाश कैसे दूं! उल्लू को प्रकाश देने का क्या अर्थ? न बाबा, मैं कुछ नहीं करना चाहता। जगत अपने में मस्त रहे मैं अपनमें मस्त हूं।

पापी मार कहता है— यही ठीक है। मार्ष, तुम सेवा के फन्दे में मत पड़ो। तुम सत्यशिव देना चाहते हो जगत सुन्दर चाहता है। तुम सीधा मार्ग बताना चाहते हो, जगत कहता है सीधा तो मैं समझता हूं उसमें तुम्हारी क्या जरूरत? तुम जगत के काम के नहीं। मार्ष, जब तुम देखोगे कि दुनिया में ठगों की ही जय है

तुम पर तो दुनिया हँसती ही है उपेक्षा ही करती है तब तुम खिन्न हो जाओगे। जहां असफलता निश्चित है वहां जाना ही क्यों ? तुमने सिद्धि पा ली, बस आनन्द करो। जगत नरक के द्वार में जा रहा है तो जाने दो, वह तो जायगा ही, तुम क्यों उसके लिये परेशान हो रहे हो ! कीचड़ को दूध मलाई बनाने के लिये उसमें अपना दूध क्यों डाल रहे हो ?

पर इस पापी मार को हटाने के लिये मेरे अन्तस्तल का ब्रह्म जोकि सम्पूर्ण सद्वृत्तियों का सभापति है, सदा जगता रखता है। उसने मार पापी से कहा—धूर्त, दुनिया के धूर्तों की विजय होती है तो क्या सब धूर्तों के सम्राट तेरी भी विजय होने दी जाय। जगत नहीं समझता तो क्या हुआ? कम से कम एक आदमी तो समझेगा। अगर बुद्धने एक आदमी का भी उद्धार कर दिया तो क्या हानि है एक से दो तो हुए। फिर जो बुद्ध है ज्ञानी है जिन है योगी है उसे सफलता असफलता की क्या पर्वाह। असफलताएँ उसे निराश और दुखी नहीं कर सकतीं। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है वह कर्म किये बिना सुख से नहीं रह सकता, ऐसी जड़ता उसे पसन्द नहीं है, इस प्रकार जब हर हालत में कर्म करना स्वाभाविक है तब बुद्ध जनजागरण का काम क्यों न करें ?

यह ब्रह्मानुरोध ही मुझे ठीक मालूम होता है। मुझे निरपेक्ष सेवक बनना चाहिये। जगत पागल रोगी के समान है। जो अपने वैद्य को नहीं पहिचानता। वह वैद्य को गाली देता है सताता है पर जो परोपकारी वैद्य है वह इस दुर्व्यवहार की पर्वाह न करके रोगी की चिकित्सा करता है मैं भी जगत की चिकित्सा करूंगा।

मेरे इस निरपेक्ष दृढ़ निश्चय से पापी मार फिर पराजित होकर भाग जाता है।

( ७ )

इस देश की विचार शक्ति नष्ट हो गई है। लोग यह सोच नहीं सकते कि कोई मनुष्य कुछ विचार करके जगत के सामने भी कुछ रख सकता है। अपने अनुभव से खोजकर कोई कुछ सत्य जगत के सामने रक्खे तो जगत यही पूछताहै—कहां से लाये तुम यह सत्य, किस शास्त्र या किस गुरु से पाया है यह तुमने। भले आदमी यह नहीं सोचते कि शास्त्रों का मूल और गुरुत्व का मूल भी तो अनुभव है। अगर शास्त्रकारों ने इस जगत को अनुभव से पढ़ा तो आज कोई क्यों नहीं पढ़ सकता।

बेचारा उपक आजीवक भी ऐसाही भोला निकला। मेरा परिचय पाकर और मेरे मुँह से कुछ नई बातें सुनकर वह चकित हुवा। पर बेचारा यह न सोच सका कि वर्षों तपस्या करके दिन रात ध्यानमग्न रहकर यह अमूल्य सत्य मैंने खोज लिया है। उसने मेरी नई बातें सुनकर यही पूछा— तुम्हारा गुरु कौन है!

मैंने कहा—कोई व्यक्ति विशेष मेरा गुरु नहीं है, यह सारा जगत् मेरा गुरु है। प्रकृति ही एक खुली हुई पुस्तक है उसे मैंने अपने अनुभव से पढ़ा इसलिये मैं स्वयं अपना गुरु हूं। मैं अर्हत् हूं, शास्ता हूं, संबुद्ध हूं, जगत में धर्मचक्र घुमाने के लिये काशियों के नगर को जा रहा हूं।

उपक हँसकर बोला—महाशय, जैसा तुम दावा करते हो

वैसे होते तो अनन्त जिन बन जाते।

मैंने कहा-मुझ सरीखे प्राणी ही अनन्त जिन कहलाते हैं। जिनत्व चमड़े पर नहीं दिखाई देता और न जिनत्व का कोई बाहरी ठाठ होता है। वह तो आत्मशुद्धि पर निर्भर है। जिसने सत्यका दर्शन किया है विकारों पर विजय पाई है वही जिन है।

'अच्छा भाई होगे तुम जिन' यह कह कर नाक मुँह सिकोड़ता हुआ उपक चला गया।

उपक कुछविद्वान था सन्यासी था पर वह भी मुझे न समझ पाया। सोचता हूं यह दुनिया मुझे कैसे समझेगी?

जीवन में लोग किसी को नहीं समझते। मुझे भी न समझेंगे। पर मुझे विश्वास है कि एक न दिन दिन मेरे मार्ग पर लोग चलेंगे। मैं जो सत्य जगत को दे रहा हूं उससे जगत का कल्याण है इसलिये वह आज नहीं तो कल समझेगा। हाँ, समझने का ठेका विद्वानों ने नहीं लिया है। जनसाधारण की अपेक्षा विद्वान कहलानेवाले की अन्धश्रद्धा भयंकर होती है। जनसाधारण अपनी अन्ध-श्रद्धापर बुद्धिवाद का आवरण नहीं चढ़ाता जब कि पंडित चढ़ाता है। इस आत्मवञ्चना से पंडितलोग सत्य के दर्शन नहीं कर पाते साधारण समझ के भावुक व्यक्ति ही सत्य के दर्शन कर पाते हैं। पंडित अगर सौमें एक सत्यदर्शन करेंगे तो साधारण जनमें सौमें दस या बीस सत्यदर्शन करेंगे। उपक पंडित है उसकी अन्धश्रद्धा अनन्त है। अपनी अन्धश्रद्धा को वह खुद नहीं समझ पाता। उसने उस पर बुद्धिवाद का आवरण चढ़ा लिया है। जगत में न जाने कितने उपक भरे होंगे, वे मुझे न पहिचानेंगे जिन में अन्धश्रद्धा नहीं है, अहंकार नहीं है जो जिज्ञासु

और मुमुक्षु हैं, वे विद्वान हों या न हों मुझे पहिचानेंगे और मैं उन्हें सत्यदर्शन करा सकूंगा।

खेद है कि आलारकालाम जिन्दा नहीं हैं और उद्दक राजपुत्र के मरने के समाचार भी अभी अभी मिले हैं ये लोग सुपात्र थे। इनके पास समझदारी भी थी निष्पक्षता भी थी और जिज्ञासा भी थी।

जब मैं इनके पास शिक्षण लेने के लिये गया और शीघ्र ही शिक्षण समाप्त करके मैंने कहा कि और सिखाइये आपके पास क्या है ? तब इन दोनों ने बिलकुल साफ़ दिल से कह दिया कि अब हमारे पास कुछ नहीं है अब तुम सब सीख गये हो इसलिये आचार्य बनजाओ। पर मैंने आचार्य बनने से इनकार किया और अंतिम सत्य पाने की इच्छा प्रगट की। तब उनने अन्यत्र जाने की अनुमति दी। जगत में ऐसे सरल-हृदय विद्वान बड़ी मुश्किलसे मिलते हैं। अगर आज वे जिन्दा होते और मेरे इस अंतिम सत्य को सुनते तो अवश्य प्रसन्न होते और मेरे मार्ग को स्वीकार करते।

परन्तु आज यह प्रारम्भ ही बुरा हुआ, पहिले ही कौर में मक्खी निकली। क्या इसे अपशकुन समझूं ? छिः, अब मैं शकुन और अपशकुन से परे हूं। यह भी दुनिया में एक भ्रम है। शकुन और अपशकुन कल्पना के भूत हैं जो निर्बलहृदयों को डराया करते हैं। मेरा ये क्या कर सकते हैं ? अगर सौ बार असफलता हो तो एक सौ एक बार मैं प्रयत्न करने को तैयार हूं। अगर अपशकुन कोई चीज़ भी होती तो बार बार निष्फल होकर भी मैं उनकी शक्ति क्षीण कर देता। मुझे शकुन अपशकुन की पर्वाह न करना चाहिये और न मान अपमान की चिन्ता।

उपक ने जो आज मेरा अपमान या तिरस्कार किया ऐसे अपमान तिरस्कार तो मुझे बहुत से सहना पड़ेंगे। मुझे यह विष पीना ही न पड़ेगा पचाना भी पड़ेगा। जो महादेव है उसे विष पचाना ही पड़ता है।

[ ८ ]

आशा नहीं थी कि मुझे समझने वाले इतने अधिक लोग इतनी जल्दी मिल जाँयगे। इस साधुसंस्था का यह गौरव है कि लोग लाखों की सम्पत्ति छोड़ कर इसमें शामिल होते हैं। वैभव का त्याग करनेवाले जितने शिष्य मुझे मिलेंगे यह संस्था उतनी ही गौरवान्वित होगी। ऐसे लोग प्रलोभनों को अधिक जीत सकते हैं। उन को बात बात पर इस बात का खयाल आता है कि इससे अच्छा तो हम गृहस्थ अवस्था में खा सकते थे, पहिन सकते थे, और स्वतन्त्रता से कर सकते थे अब भिक्षा से भोग भोगने का क्या अर्थ है। जो लोग अपनी गरीबी को छुपाने के लिये या किसी तरह पेट भरने के लिये मेरी साधु संस्था में आयेंगे और यह देखेंगे कि खाने पीने की सुविधा पहिली अवस्थासे अच्छी है या नहीं, वे कुछ नहीं दे सकते न कुछ पा सकते हैं, उन्हें साधु बनना कठिन है।

यह अच्छी बात है कि बहुत से वैभवत्यागी भी मेरी संस्था में; हैं। उन्हें त्याग का आनन्द आ गया है। शारीरिक सुखों की अपेक्षा मानसिक सुख में वे अधिक सन्तुष्ट हैं। वास्तव में सुख मनकी ही चीज है पर दुनिया इसे समझती कहाँ है? वह बाहर ही सुख देखती है। दुनिया यह नहीं सोचती कि यदि प्रकृति

अच्छी न हो, जीभ अच्छी न हो, भूख न हो तो षड्रस व्यंजन भी बेस्वाद मालूम होंगे। यदि भूख हो, नीरोगता हो, तो सूखे चने भी षड्रस व्यंजन से लगेंगे। आनन्द का स्रोत भीतर से है बाहर से नहीं। जिसने इस तत्व को समझ लिया है वही त्यागी या साधु बन सकता है।

जब भद्रा और पिप्पली की बात पर विचार करता हूं तब त्याग की महत्ता के आनन्द से दिल भर जाता है। भद्रा सरीखी सुवर्णवर्णा सौन्दर्य मूर्ति युवती, एक विपुल श्रीमन्त की बेटी, एक विपुल श्रीमन्त की पुत्रवधू, एक विद्वान श्रीमान स्वस्थ सुन्दर युवक की पत्नी, उसने संसार-हित और आत्महित के लिये गृहत्याग कर दिया। और ऐसी पत्नी और विशाल वैभव का त्याग करके सैकड़ों दास दासियों को स्वतन्त्र करके पिप्पली भी गृह त्यागी हो गया और आज वह मेरे पास ब्रह्मचर्य चरण कर रहा है। ऐसे ही लोगों से संघ की महिमा है। ऐसे ही लोग बिना किसी प्रलोभन में पड़े जनता की सेवा कर सकते हैं। पिप्पली के त्यागने सैकड़ों दास दासियों को स्वतन्त्र कर दिया उसकी सम्पत्ति सैकड़ों घरों में बटकर आनन्द वर्षा करने लगी यह क्या जगत की कम भलाई है?

खाने और पहिरने के लिये मनुष्य को बहुत थोड़ा चाहिये। अगर सब लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार खाया और पहिना करें तो जगत में गरीबी दिखाई ही न दे। आर्थिक संघर्ष रुक जाने से जगत् के प्रायः सभी पाप निःशेष हो जाँय। पर मनुष्य में ऐसी तृष्णा है कि उसने जगत् को दुःखागार बना रक्खा है। इस दुःखागार को जितना सुखमय बनाया जासके उसीके लिये मेरा यह प्रयत्न है।

जितने लोग मेरी साधु संस्था में प्रविष्ट होंगे जगत का आर्थिक संघर्ष उतना कम हो जायगा। जगत् की सम्पत्ति को बटवाने वाले कम होंगे। खास कर श्रीमन्तों के संन्यास से जगत् का बहुत लाभ है क्योंकि सम्पत्ति उनके पास रुकी रहकर दूसरों की हानि करती है।

अगर भद्रा पिप्पली सरीखे श्रीमान लोग गृहत्याग करने लगें तो जगत से दासता बिलकुल नष्ट हो जाय, गरीबी अदृश्य हो जाय। देखूं, मैं कहां तक सफल होता हूं।

जगत पर इन श्रीमन्तों का बोझ ही नहीं है किन्तु साधुवेषियों का भी बोझ है। ये साधुवेषी भी परिग्रह के घर बन गये हैं। इनके ठाठ राजाओं से कम नहीं होते। ये सत्य को ग्रहण करने को तैयार नहीं हैं। कोई लुप्ततत्त्व का आविष्कार करे, जगत को विवेक और सच्चे त्याग के रास्तेपर ले जाय तो ये लोग उसमें बाधा डालते हैं। पर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को धन्य है जो इस चक्कर से निकल कर आज मेरे पास ब्रह्मचर्य चरण कर रहे हैं।

आज के बहुत से साधुवेषी लोग परलोक के नामपर भोले लोगों को लूटते हैं, ज्ञान के विकास को रोकते हैं, कुरूढ़ियों की पूजा करते हैं विचारकता का दमन करते हैं। फिर भी आज वे लोकपूज्य हैं श्रीमान् हैं महन्त हैं। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन भी इसी साधु संस्था में थे पर ये जिज्ञासु थे सत्य के खोजी थे इसलिये जब इनने अश्वजित् को भिक्षा लेते देखा और उस के मुँहसे मेरा सन्देश सुना तो तुरंत ही मुझे शास्ता मान लिया और परिव्राजक

संघ की महन्ताई का प्रलोभन छोड़ कर मेरे पास ब्रह्मचर्य-चरण को आगये।

संजय परिव्राजक ने इन से कहा—आवुसो, यह अनर्थ मत करो। तुमने परिव्राजक संघ से सब कुछ पाया है तुम दोनों को मैं आज ही परिव्राजक संघ का महन्त बना देता हूं। अनेक श्रीमान इस संघ के भक्त हैं वे तुम्हारे इशारे पर नाचेंगे। तुम्हारी तारीफ करेंगे। शाक्यपुत्र के पास जाकर तुम क्या पाओगे? बहुत से शिष्यों में तुम भी एक शिष्य बनकर रहजाओगे। यहाँ तुम महन्त बनोगे वहाँ तुम सिर्फ सेवक शिष्य रहोगे। सोचलो आवुसो, तुम्हारा हित किस में है? पर सारिपुत्र और मौद्गल्यायन ने कहा-उस महन्ताई से जीवन की सफलता नहीं है। जीवन की सफलता है सत्य के पाने से। महात्मा गौतम के पास जाकर हम जिस सत्य को पायेंगे जिस शान्ति को पायेंगे जैसा जनहित कर सकेंगे वैसा यहाँ नहीं कर सकेंगे। ऐसी निःसार महन्ताई किस काम की? वहाँ हम शिष्य रहेंगे, हमें किसी की सेवा करना पड़ेगी, कदाचित् यहां के समान वहां पूजा न होगी तो इससे हमारा क्या बिगड़ जायगा? भक्ति के वश होकर अपने से महान की सेवा करना धर्म और सौभाग्य ही नहीं है किन्तु आनन्द भी है। इस आनन्द से क्यों डरना चाहिये। साधु होकर परिश्रम से क्यों डरना चाहिये? रहा सन्मान और यश, सो इस का श्रोत तो भीतर से है। सत्य पर प्रतिष्ठित होने से जो आत्मसन्तोष होता है वह दुनिया की प्रशंसा से हजारगुणा सुखद है। आवुस, अब हमें बाहर की महन्ताई नहीं चाहिये भीतर का राज्य चाहिये। अब हम जाते हैं।

इस प्रकार सत्य की भक्ति, जनसेवा की भावना और आत्म-शान्ति से प्रेरित होकर लोग मेरे पास आ रहे हैं। ऐसे त्यागी जबतक इस जगत में हैं तबतक यह कहा जा सकता है कि मनुष्य समाज का भविष्य उज्वल है। यदि मानव समाज में उपक हैं तो सारिपुत्र मौद्गल्यायन भद्रा पिप्पली आदि भी हैं। निराश होने का कोई कारण नहीं है।

( ९ )

आज समाचार मिले हैं कि आनन्द के तीस शिष्य प्रव्रज्या छोड़कर गृहस्थ हो गये। वे सब के सब इकदम तरुण थे। दूसरा समाचार यह भी मिला है कि मेरे भिक्षु अत्यन्त असभ्यता का आचरण करते हैं। भोजन को जाते हैं तो इतना शोर मचाते हैं मानों युद्ध कर रहे हों। भीख माँगने में आगे आगे दौड़ते हैं जहां चाहे वहां जूँठा पात्र पसार देते हैं। इन्हें देखकर कौन कहेगा कि ये प्राकृत जन से कुछ विशेष हैं।

इन मोघ पुरुषों को, नालायकों को, मैंने बहुत फटकारा और इन लोगों को व्यवस्था से रहने के लिये मैंने इनके उपाध्याय और आचार्य बना दिये। ये लोग अपने उपाध्याय और आचार्य की सेवा किया करेंगे और आचार्य और उपाध्यय इनकी सहायता किया करेंगे। इस प्रकार इनकी अव्यवस्था दूर हो जायगी। परस्पर अवलम्बन से ये निराकुल भी रहेंगे।

आनन्द के तीस शिष्य साधु भाग गये इसके लिये महा-काश्यपने आनन्द को बहुत फटकारा है। वास्तव में आनन्द में

दीर्घदृष्टि नहीं है वह वर्तमान को ही देखता है और नगद पुण्य का पुजारी है। बहुत जल्दी प्रसन्न भी होता है। कोई भी काम जल्दी कर डालता है। भविष्य में उसका क्या होगा इस की चिन्ता नहीं करता। महाकाश्यपने उसे ठीक ही फटकारा। मेरे पास आता तो शायद मैं उसे इतना न फटकारता पर शिष्यमोह से दूर रहने के लिये चेतावनी अवश्य देता।

किसान जब खेती करता है तब अनाज के पौधों के साथ घास भी ऊगता है पर घास के डरसे वह खेती बन्द नहीं कर देता। मेरे संघ की भी यही बात है। मेरे संघ क्षेत्र में जहाँ सारिपुत्र मौद्गल्यायन सरीखे अनाज के पौधे हैं वहां भिक्षा के लिये शोर मचानेवाले, भिक्षु बनकर भागजानेवाले घास भी हैं। सो वह घास उखाड़ दिया जायगा, या स्वयं उखड़ जायगा, जैसे कि आनन्द के शिष्य भाग गये। इस में डरने या शरमिन्दा होने की क्या बात है। बल्कि मैं तो यही ठीक समझता हूं कि कुछ समय के लिये ही क्यों न हो हर एक मनुष्य को गृहत्यागी के जीवन का अनुभव मिले तो उस का बहुत लाभ होगा। संघ में जिसे जितने दिन रहना हो रहे, जाना हो जाये, इस की मुझे चिन्ता नहीं है न इसमें मैं संघ की निन्दा समझता हूं।

जो इन बातों से मेरे संघ की निन्दा करते हैं उनसे मैं कहता हूं कि वे ऐसी खेती कर दिखायें जिसमें घास न ऊगता हो।

( १० )

लोग कहते हैं श्रमण गौतम घर उजाड़ता है। वह पतियों को साधु बनाकर स्त्रियों का सुहाग लूटता है, बूढ़ों के सहारे

नष्ट करता है बेटों के बाप लूटता है अच्छे अच्छे श्रीमन्त घर इसने उजाड़ दिये हैं एक हजार जटिलों के सिर मुड़ा दिये। सञ्जय के ढाई सौ शिष्यों को भी मूड़ ले गया। अब न जाने किसे हड़पने यहां आया है।

मूढ़ लोग जो इस प्रकार की निंदा करते हैं उसका समाचार लेकर मेरे शिष्य मेरे पास आये थे। मैंने उनसे कह दिया— तुम लोग चिन्ता न करो एक सप्ताह से अधिक यह निन्दा न रहेगी और सत्यके दर्बार तक तो एक क्षण भी न पहुंचेगी।

यह तो प्रसव-पीड़ा है। समाज में समता लाने के लिये यह पीड़ा आवश्यक है। मैं अमीरोंके घर उजाड़ना चाहता हूं क्योंकि ऐसा होने से ही गरीबों के घर बसेंगे। भोग में उन्मत्त ललनाएँ सम्पत्ति की निःसारता समझेंगी, दान देना सीखेंगी। अभी समाज भोग विलास की तरफ इतना झुक गया है कि उसे दूसरी दिशा में लाने के लिये यह करना ही चाहिये। समय आयगा जब मैं इस काम में रोक लगाऊंगा। मेरा मार्ग मध्यमें है, मैं निरतिवादी हूं। विलासियों की संख्या घटाना आवश्यक है। सम्पत्ति के विभाजन के लिये भी यह जरूरी है। बाद में जब ऐसा अवसर आयगा कि संन्यास का अतिरेक होगा समाज सन्यासियों का बोझ न सह सकेगा गृहस्थाश्रम को ही धक्का लगने लगेगा तब मैं अवश्य इस विषय में रोक लगा दूंगा। अभी तो मुझे श्रीमानों के घर उजाड़ना है इससे समाज का विकार कम होगा और समाजके लिये योग्य सेवक भी मिलेंगे।

जनता तो पागल रोगी के समान है उसे तो सिर्फ चिकित्सा का कष्ट मालूम होता है। चिकित्सा से क्या लाभ होगा इसे वह नहीं

देख सकती । वह तो वैद्य ही देख सकता है इसलिये वह रोगी के आक्रोश की चिन्ता नहीं करता । समाज की चिकित्सा के लिये मुझे भी जनता के आक्रोश की चिन्ता न करना चाहिये ।

( ११ )

अब मुझे मातृभूमिका मोह नहीं है, अब तो सारा विश्व मेरे लिये मातृभूमि है, फिर भी जब आज कपिलवस्तु आया तो ऐसा न मालूम हुआ कि सारे विश्व में से किसी एक स्थान पर आया हूं । पूर्व संस्कार से अन्य स्थानों की अपेक्षा कुछ विशेष अनुभव हुआ । यद्यपि मैं बुद्ध होगया हूं फिर भी पापी मार के आक्रमण होते ही रहते हैं । वह बोला– मार्ष, यद्यपि तुम गृहत्यागी हो फिर भी जब कुलनगर में आये हो तो जो तुम्हें देखने के लिये अधिक उत्सुक हैं उनके यहाँ तुम्हें पहिले जाना चाहिये । तुम्हारे पिता और तुम्हारी पत्नी तथा अन्य स्वजन परिजन वर्षों से तुम्हें देखने को तरस रहे हैं तब सब घर छोड़कर तुम पहिले अपने ही घर में भिक्षा माँगने जाओ ।

मैंने कहा– मार, जो बुद्ध है, वीतराग है, जिन है, उसे यह पक्षपात शोभा नहीं देता । मेरे लिये कौन उत्सुक है कौन अनुत्सुक इस का विचार करने की अपेक्षा मुझे यही देखना चाहिये कि मेरे संघ के लिये कौन उत्सुक है और कौन अनुत्सुक, इस दृष्टि से मुझे यही मालूम होता है कि मेरे घर के स्वजन परिजनों की तरह अन्य नागरिक भी उत्सुक हैं । अब मैं स्वजन परिजन का पक्षपात नहीं करता । इसलिये वर्णों के क्रम से भिक्षा लूंगा ।

मैं क्रमसे ही भिक्षा के लिये [illegible] रहा [illegible] घर [illegible] प्रासाद

मुझे दिखाई दिया। मैं उस पर अपनी दृष्टि न रोक सका। प्रासाद के एक झरोखे में मुझे राहुलमाता दिखाई दी। ओह, कितना अन्तर था। जिसे मैंने रातको सोते छोड़ा था वह एक राजकुमारी थी, और अब जिसे देखा वह राजकुमारी होकर भी एक भिक्षुणी सी मालूम हुई।

मुझे देख कर ही वह भीतर चली गई, कदाचित् महाराज को समाचार कहने गई होगी। शायद उसने महाराज से ताना मारकर कहा होगा-देखो, तुम्हारा बेटा आज भिखारी है; क्योंकि थोड़ी देर बाद ही महाराज शुद्धोदन महल से निकल कर मेरे पास आये।

मोह कितना प्रबल है। महाराज शुद्धोदन मुझे अब भी अपना बेटा समझते हैं, इसीलिये भिक्षाटन के मार्ग में ही आकर वे बोले– बेटा, मुझे क्यों शर्मिन्दा करते हो? क्यों भिक्षा माँगते हो? क्या तुम्हें और तुम्हारे शिष्यों को मैं भोजन नहीं दे सकता!

मैंने कहा– महाराज हमारे वंशका यही रिवाज है।

महाराजने कहा– बेटा अपना वंश तो महान् क्षत्रिय वंश है। अपने वंश में कभी किसीने भिक्षा नहीं माँगी। भिक्षा दी तो है, पर ली कभी नहीं।

मैं– महाराज, आप जिस वंश की बात कर रहे हैं वह शरीर वंश है पर मैं आध्यात्मिक वंश की बात कर रहा हूं। मैं अब शाक्यवंशी नहीं हूं श्रमणवंशी हूं।

महाराज– बेटा भौतिक भोजन के लिये तो भौतिक वंश का विचार करना चाहिये।

मैं— महाराज जिनका भोजन भूतपोषण अर्थात् शरीर-पोषण के लिये है वे मौतिक वंश का विचार करते हैं और जिनका भोजन आध्यात्मिकता के लिये है वे आध्यात्मिक वंशका विचार करते है।

महाराज--अच्छा है बेटा, जैसा समझो वैसा करो। पर मेरे जीते जी मेरे ही नगर में इस प्रकार पहिले ही दिन भिक्षा न माँगो। अपने सब भिक्षुओं को लेकर महल में चलो। वहीं सब लोग भोजन करें और तुम वर्षों से प्यासे नयनों को दर्शनामृत पिलाओ।

इस प्रकार महाराज के अनुरोध से मुझे राजप्रासाद में जाना पड़ा। यद्यपि श्रमण को राजा रंक में समभाव रहता है जिसका परिचय मैं गृहक्रम से भिक्षा लेकर दे चुका हूं फिर भी अन्धसमभाव ठीक नहीं। समभाव के नामपर हठवाद न होना चाहिये, व्यर्थ ही लोगों के दिल न दुखाना चाहिये। मार्ग मध्य में है अतिवाद में नहीं। श्रेष्ठ पुरुषों के अनुरोध का भी कोई मूल्य होता है, सिर्फ़ इसी दृष्टि से मैंने महाराज शुद्धोदन का अनुरोध माना। दुनिया समझे कि गौतम, बुद्ध है। वह हठी नहीं है, लकीर का फकीर नहीं है।

एक बात और है, वहाँ मुझे एक बार जाना तो था ही। और यह भी देखना था कि राहुल-माता के ऊपर इन परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ा है? इसमें सन्देह नहीं कि मैंने उसके साथ बड़ा अन्याय किया है, उसके जीवन का रस छीन लिया है पर

जब तक संसार में पाप है तब तक उसके चिकित्सकों को इस प्रकार का कष्ट सहना ही पड़ेगा और अपने सम्बन्धियों को देना ही पड़ेगा।

फिर एक क्षत्राणी को तो ऐसे वैधव्य के लिये सदा तैयार रहना पड़ता है। अगर मैं घर में रहता, राजा बनता, युद्ध में जाता, कदाचित् मारा भी जाता, तो भी राहुलमाता को वैधव्य का कष्ट सहना पड़ता। सच्चा वीर इतना ही कह सकता है कि अन्याय के लिये युद्ध न करूंगा, पर न्याय के के लिये युद्ध करना पड़े तो उसमें वह मारा भी जा सकता है। एक वीरपत्नी को राजस चिकित्सा में अगर वैधव्य की सम्भावना है तो इस श्रमणपंथ की सात्विक चिकित्सा में भी हो तो क्या आश्चर्य है। एक साम्राज्य के लिये हजारों वीरों की जानें जातीं हैं, हजारों नारियाँ विधवाएँ होतीं हैं, हजारों बहिनों के भाई बिछुड़ जाते हैं, हजारों माता पिता अपुत्रक हो जाते हैं हजारों शिशु पितृहीन हो जाते हैं, इतने पर भी युद्ध में जाते हुए वीरों को विदाई दी जाती है उन्हें मालाएँ पहिनाई जातीं हैं; तब धर्मसाम्राज्य की स्थापना में, दुनिया से पाप और दुःख को दूर करने में, युवकों को और महर्द्धिकों को गृहत्याग करना पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य है?

राहुलमाता बुद्धिमती है, विदुषी है, वह इस तत्त्व को समझती है, अथवा उसे समझना चाहिये। मुझे उसके विषय में इसी बात की उत्सुकता थी कि वह कैसी है, मेरे जीवन में जो क्रान्ति हुई उसका उसके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? मोह न होने पर भी यह सहज उत्सुकता थी जोकि आज समाप्त हो गई।

मुझे इस बात से प्रसन्नता हुई कि राहुलमाता एक वीरपत्नी है वीरमाता है वीरनारी है। मेरे जाने पर सब मेरे दर्शनों को आये पर वह न आई। सब भिक्षुओं के साथ मैंने भोजन किया पर वह परोसने भी न आई, दिखी भी नहीं। उसका यह आत्मगौरव ठीक ही था। आखिर मैं उसका अपराधी हूं। गृहत्याग भले ही किसी हालत में उचित और आवश्यक हो, पर इस प्रकार चोर की तरह भागना तो उचित नहीं कहा जा सकता है। अधिक से अधिक वह आवश्यक कहा जा सकता है और इतने ही अंश में उसका औचित्य है अन्यथा वह अपराध तो है ही।

उसका यह स्वाभिमान उचित ही नहीं था आवश्यक भी था। इससे मालूम हुआ कि उसने विषयों पर विजय पाई है, बाहर से सहगामिनी न होने पर भी वह भीतर से सहचरी रही है। उसे मेरा मोह नहीं था प्रेम था, इसीलिये इतने वर्षों के बाद घर में आने पर भी वह मेरे देखने के लिये बाहर न निकली। धन्य उसका धैर्य, और धन्य उसकी महत्ता।

मैं बुद्ध जिन या अर्हत हो गया हूं पर जबतक इस शरीरमें हूं तबतक इस शरीर के सम्बन्धों से सर्वथा उदासीन नहीं हो सकता। गृहस्थ जीवनमें पतिरूप में जो मैंने अन्याय किया—चोरी से गृहत्याग किया, उसका नाममात्र का प्रायश्चित्त करना जरूरी था, इसके अतिरिक्त एक गौरवशालिनी नारी के गौरव की रक्षा करना भी जरूरी था, इसलिये मैं अन्तःपुर में राहुलमाता को दर्शन देने या उसके दर्शन करने गया।

यह अच्छा हुआ कि महाराज माथमें थे और यह उससे भी अच्छा हुआ कि मैंने अपने दोनों मुख्य शिष्यों--सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को साथ में ले लिया था। पर उनको कह दिया था कि राहुल माता मेरे साथ जो भी व्यवहार करे, करने देना, तुम लोग बीच में न बोलना। वह चाहे राग प्रगट करती या द्वेष, मैं दोनों परिस्थितियों का सामना करने की तैयारी से गया था। पर धन्य है उस देवी को, उसने न तो राग प्रगट किया न द्वेष। उसने सिर्फ सिर झुकाकर मुझे प्रणाम किया।

पहिले तो मैंने यही समझा कि देवीने प्रतिशोध लिया है। जैसे मैंने उपेक्षा करके उसका त्याग किया उसी प्रकार मेरे ऊपर उपेक्षा कर रही है। अच्छा होता अगर उसके दिलमें प्रतिशोध की भावना होती, उस की इस उपेक्षा मे मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाता और मन का बोझ भी उतर जाता, पर इसी समय महाराज ने मेरा सारा भ्रम दूर कर दिया। महाराज बोले---

भन्ते, मेरी बेटी बड़ी गुणवती तपस्विनी त्यागशीला और पति-भक्ता है। जिस दिन इसने सुना कि मेरे पति गेरुए कपड़े पहिनने लगे हैं तबसे यह गेरुए कपड़े पहिनने लगी है, जब से सुना कि मेरे पति एक बार भोजन करते हैं, तभी से एक बार भोजन करती है, जब से सुना कि मेरे पति पलंग पर नहीं सोते तभीसे इसने भी पलंग छोड़ दिया है, जब से सुना कि तुमने गंध माला आदि का त्याग कर दिया है तभी से इसने इन सब का त्याग कर दिया है। पीहरवाले अनेक बार बुलाने आये, उनने बहुत कहा कि हम तुम्हारी

हर तरह सेवा सुश्रूषा करेंगे, पर इसने उनकी बातों पर जरा भी ध्यान नहीं दिया।

महाराज की बातें सुनकर मैं सिहर उठा। अच्छा हुआ कि मैं वृद्ध हो गया हूं नहीं तो महाराज की बातें सुनकर मैं रो देता।

मैंने राहुलमाता की खूब तारीफ की उपदेश दिया और चला आया। कदाचित मैं उसकी पतिभक्ति, त्याग, और तप के तेज को अधिक देर तक सह भी न पाता।

नारी, तेरे बन्धन कितने कोमल पर कितने मजबूत हैं! उन्हें तोड़ना क्या सरल है? उस रात को अगर मैंने चोरी से गृहत्याग न किया होता तो क्या तेरे इस कोमल बन्धन को तोड़कर निकल सका होता? अथवा क्या मुझे अस्वाभाविक रूपमें निष्ठुर न बनना पड़ा होता। पर उस दिन वह निष्ठुरता ठहरती किसके सहारे? मैं किसलिये गृहत्याग करता हूं यह तो मैं भी नहीं जानता था। इस प्रकार एक तरफ़ तो निष्ठुरता को खड़े होने के लिये जगह नहीं थी दूसरी तरफ़ पत्नी के प्रति भी कुछ कर्तव्य था, उसके ऊपर एक तरह से वैधव्य का वज्र बरसाने का भी भय था, ऐसी अवस्था में वह निष्ठुरता क्या मनुष्यता का अंग रहपाती? उसकी मनुष्याङ्गता मैं भी कैसे समझता, और मैं समझ भी जाता तो देवी को कैसे समझाता?

वीराङ्गनाएँ मृत्युमुख में जाते हुए अपने पति को विदा देती हैं, पर उनके सामने युद्ध, विजय, राष्ट्ररक्षा आदि कर्तव्य का स्पष्ट निर्देश रहता है, पर मेरे सामने क्या था? मेरे सामने ध्येय भी

धुँधले रूपमें दिखाई देता था, मार्ग का तो पता भी नहीं था, तब क्या कहकर मैं राहुलमाता से विदा माँगता और ऐसे अनिर्दिष्ट-पथ-विहार के भरोसे प्रेम-बन्धन को कैसे तोड़ पाता। आज जो मैंने पाया इसका तो उस दिन मुझे भी पता न था, फिर राहुलमाता को कैसे समझाता ?

पुरुषने नारी को कैद करने की कोशिश की, पर नारीने अपनी असाधारण योग्यता से उस कैद को स्वर्ग बनाकर पुरुष को भी कैद कर लिया। पुरुष ने शक्ति का प्रदर्शन किया पर नारी ने प्रेम और सहानुभूति से शक्ति को पराजित करके पुरुष को अपने में मिला लिया।

आज राहुलमाता की इस प्रचंड शक्ति का परिचय मिला। सुदूर रह कर भी राहुलमाता ने मुझे अपनी कैद में रक्खा। मैंने उसे खोया पर उसने मुझे पाया। नारी की इस प्रचंड सात्विक शक्ति को पुरुष के सौ सौ प्रणाम।

पापी मार आज जितना दुर्दान्त था उतना कभी नहीं हुआ, वह जब विपत्ति बनकर आता है तब एक कर्मठ व्यक्ति उसे सहज में ही जीत सकता है, जब प्रलोभन बनकर आता है तब जीतना कुछ कठिन होनेपर भी एक साधु उसे सरलता से जीत सकता है; परन्तु जब वह प्रेम या कर्तव्य बनकर किसी महान कर्तव्य के मार्ग में बाधा डालता है तब उसे जीतना बुद्ध और जिन के लिये भी कठिन हो जाता है। यद्यपि अन्त में बुद्ध या जिन की ही जीत होती है पर इसमें बुद्ध जिन या अर्हत् की शक्ति की पूरी कसौटी हो जाती है। आज मेरी शक्ति की ऐसी ही कसौटी हुई।

१२

राजनैतिक साम्राज्य की अपेक्षा धार्मिक साम्राज्य की स्थापना बड़ी कठिन है। राजनैतिक साम्राज्य की स्थापना में पशु और नर-पशु तक काम दे जाते हैं और उनसे डंडे के बल से काम लिया जा सकता है परन्तु धर्म-साम्राज्य के लिये ऐसे सैनिक काम नहीं देते। उसके लिये तो उच्च कोटि के सैनिक ही विशेष उपयोगी हैं भले ही वे संख्या में थोड़े हों। भुख-मरे आदमी भिक्षु बनकर धर्म-साम्राज्य के सैनिक कहलाने लगें तो वह धर्म-साम्राज्य घड़ियों में उखड़ जायगा। आज जो मुझे सफलता मिली है, मिल रही है उसके अनेक कारणों में से एक बड़ा भारी कारण यह है कि जनता समझती है कि मैंने इसके लिये राज्य-वैभव, सुन्दर पत्नी और अच्छे कुटुम्ब का त्याग किया है। जिस चीज़ के लिये मैंने इतना त्याग किया है वह चीज़ अवश्य अच्छी होगी अगर जनता के दिल पर यह छाप न होती तो मेरा काम आधा क्या चतुर्थांश भी न हो पाता। जनता की इस मूढ़ता पर मुझे खेद होता है कि वह कैसी भद्दी कसौटी से सत्य की परीक्षा करती है! वह वस्तु की परीक्षा नहीं करती सिर्फ़ जिस पात्र में वह वस्तु रक्खी है उसे ही देखती है। सोने के पात्र में रक्खा हुआ वह विष भी पी लेगी और मिट्टी के पात्र में रक्खे हुए अमृत से भी नाक मुँह सिकोड़ेगी, फूल चढ़े हों तो विष्ठा भी पूजेगी, फूल न हों तो देवता को भी ठुकरायेगी उसकी यह मूढ़ता वास्तव में खेद-जनक है।

पर खेद करने से क्या होगा? वैद्य अगर रोगी की मूढ़ता पर खेद ही करता रहे तो रोगी मर जाय और वैद्य वैद्य न रहे।

मैं जनता पर खेद ही करता रहूं तो जनता का नाश तो जाय और मैं भी तीर्थंकर न रहूं। इसलिये मैंने यही निश्चय किया है कि मेरी साधु-सेवा में अधिक से अधिक महर्द्धिक युवक आवें। यद्यपि बुड्ढे और गरीबों के आने की मनाई नहीं है फिर भी जो प्रभाव और जो काम महर्द्धिकों और युवकों से हो सकता है वह गरीबों और बुड्ढों से नहीं।

वृद्धों में उत्साह नहीं होता, क्रान्ति की भावना भी नहीं होती, वे शान्त और पवित्र जीवन बिता सकते हैं पर एक तीर्थ-स्थापना में काम नहीं दे सकते। ज़िंदगी के विषय में वे यही सोचते हैं कि 'गई बहुत रही थोड़ी' अब इस थोड़ी के लिये क्या सिरपच्ची की जाय? अपवाद--रूप में कोई वृद्ध भी ऐसे होते हैं जो जवानों से बाजी लेते हैं और जो जवानी से क्रांति के काम करते चले आते हैं वे बुढ़ापे में भी क्रान्ति का काम करते रहते हैं। पर ये सब अपवाद हैं।

ग़रीबों का त्याग ऐसे आदमी का ज्ञान है जिसने परीक्षा नहीं दी है। परीक्षा दिये बिना भी मनुष्य पंडित हो सकता है पर उसके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता। ग़रीब भी प्रलोभनों को कहां तक विजय करेगा--कहा नहीं जा सकता। आज कोई भुखमरा साधु-संस्था में आ जाय और कल कोई प्रलोभन मिलने लगे, वैभव मिलने लगे तो वह उनका गुलाम जल्दी हो सकता है जब कि महर्द्धिक यह सोचता है कि ऐसे ही प्रलोभन में फँसना होता तो साधु क्यों बनते? घर में ही क्या कमी थी? इस दृष्टि से साधुओं की विशेष उपयोगिता है।

युवकों और महर्द्धिकों से प्रभाव भी अच्छा पड़ता है। बुड्ढों को साधु बनते देखकर लोग कहते हैं—ऊँह, बुड्ढा था दुनिया के किसी काम का न था चला गया। गरीबों को साधु बनते देखकर कहते हैं—ऊँह, कंगाल था, घर में खाने को नहीं था, कमाया नहीं जाता था, साधु बन गया।

यद्यपि बुड्ढा भी सच्चा साधु और कर्मठ बन सकता है, और गरीब भी ईमानदार प्रलोभन-विजयी सच्चा साधु बन सकता है, इसलिये मैं वृद्धों और गरीबों का भी संग्रह करूंगा पर संघ की महत्ता के लिये यह आवश्यक है कि उस में अधिक से अधिक वैभव और विलास का त्याग करने वाले बिलकुल तरुण व्यक्ति अच्छी संख्या में आवें। संघ की इस महत्ता से उसकी सेवा-शक्ति बढ़ेगी। महत्ता की छाप से लोग जितना लेते हैं उतना सिर्फ़ सच्चाई से नहीं लेते।

मैं जानता हूं कि जनता की यह भूल है मूढ़ता है तब तक उसीके ढंग से काम करना पड़ेगा। यह मूढ़ता दूर करने के लिये भी जनता के पास जाना अनिवार्य है तबतक के लिये यह महत्ता की छाप अवश्य चाहिये।

यही कारण है कि इस एक ही सप्ताह में में मुझे सत्य की वेदी पर अपने दो कुटुम्बियों का बलिदान करना पड़ा और जिस प्रकार एक साम्राट् को दिग्विजय के लिये कुछ न कुछ कुटिल नीति से काम लेना पड़ता है उसी प्रकार मुझे भी लेना पड़ा—मर्मस्थल पर चोट करना पड़ी। अपनी इस सफलता पर मुझे हँसना भी आता है और रोना भी आता है।

परसों जब मैं राजमहल में भिक्षा के लिये गया तब नन्दकुमार को देखकर यह इच्छा हुई कि अगर नन्द प्रव्रजित हो जाय तो न केवल संघ की महिमा बढ़े किन्तु संघ को एक अच्छा सेवक भी मिल जाय। नन्द बड़ा संकोची लड़का है, संकोच में पड़कर ही अगर वह दीक्षा ले ले तो अभिमान के कारण वह प्रव्रज्या को निभा लेगा। यह सोचकर मैंने अपने हाथ का कमण्डलु नन्द के हाथ में दे दिया। नन्द सोचता रहा होगा कि अब भगवान् कमण्डलु लेकर मुझे वापिस करेंगे पर मैंने उसे वापिस जाने को नहीं कहा।

जब नन्द मेरे साथ बाहर निकलने लगा तब किसी दासीने कहा—अज्जे, अज्जे, देखो कुमार भगवान् के साथ जा रहे हैं वे उन्हें सदा के लिये ले जायेंगे। नन्द की पत्नीने तब झरोखे में से कहा—आर्य पुत्र, जल्दी आना। फिर भी मुझे अपना दिल पत्थर सरीखा बनाकर नन्द को खींचकर लाना पड़ा और जब नन्द विहार में आ गया, तब मैंने कहा—

नन्द, तुम बड़े शक्तिशाली हो।

नन्द—सो कैसे भन्ते?

मैं—बुद्ध का कमण्डलु तुम राजमहल से विहार तक ला सके। इतनी दूर से बुद्ध का कमंडलु ला सकने की ताक़त श्रमण के सिवाय और किसी में नहीं हो सकती।

नन्द चुप रहा।

मैं—तो क्या सोचते हो नन्द, उस शक्ति का उपयोग करना चाहते हो या उस शक्ति को व्यर्थ जाने दोगे?

नन्द--उस शक्ति का उपयोग करूँगा भन्ते ।

मैं--तो इसके लिये तुम्हें प्रव्रज्या लेना होगी क्या। इसके लिये तुम तैयार हो ?

नन्द कुछ विचार में पड़ गया । फिर बोला:-

तैयार हूं भन्ते ।

इस प्रकार नन्द प्रव्रजित किया गया ।

जानता हूँ कि नन्द नव-विवाहित था इस लिये नन्द की पत्नी के विषय में कुछ अन्याय हुआ, पर विश्व-कल्याण के लिये व्यक्ति का बलिदान आवश्यक है । राहुल की दीक्षा भी आज एक विचित्र ढंग से हुई आज जब मैं राजमहल में गया तब राहुल-माता ने राहुल को यह सिखा कर भेजा कि तू अपने पिता से अपनी विरासत माँग ।

राहुलने कहा--भन्ते, आप मेरे पिता हैं, पिता की तरफ़ से मुझे विरासत मिलना चाहिये ।

मैंने पूछा--तुम अपने पिता की विरासत ले सकोगे ?

राहुल--लूँगा भन्ते ।

मैं--सम्हाल सकोगे ?

राहुल-सम्हाल लूँगा भन्ते।

मैं--अच्छा तो सम्हाल, यह श्रमण-प्रव्रज्या ही मेरी विरासत है, तू भी उसे ले । सारिपुत्र, राहुल को प्रव्रजित करो ।

इस प्रकार राहुल का भी एक तरह से अपहरण किया और उसका जीवन विश्वकल्याण के यज्ञ में लगा दिया ।

विश्वकल्याण के लिये जो स्वयं-सेवक-सेना मुझे तैयार करना है उसके लिये इस प्रकार के अपहरण मुझे जरूरी हो गये थे यद्यपि ये प्रारम्भ में अपवाद-रूप ही थे । अब इन अपवादों का मैं अन्त कर देना चाहता हूं ।

शामको महाराज शुद्धोदन आये और बोले भन्ते, मैं आपसे एक वर चाहता हूं ।

मैं--महाराज, एक भिक्षुक एक महाराज को क्या वर दे सकता है ?

महाराज--भन्ते, जो शक्य हैं उचित है वही वर चाहता हूं ।

मैं--अच्छा कहिये ।

महाराज आपके प्रव्रजित होने पर मैं दुःखी हुआ था, नन्द के प्रव्रजित होने पर और भी दुःखी हुआ किन्तु अब राहुल के प्रव्रजित होने पर तो मेरे हृदय के टुकड़े टुकड़े हो रहे हैं । भन्ते, पुत्रप्रेम मेरी छाल छेद रहा है, छाल छेद कर मांस छेद रहा है, मांस छेद कर नस छेद रहा है, नस छेदकर हड्डी छेद रहा है, हड्डी छेद कर घायल कर दिया है, अच्छा हो आप माता पिता आदि की अनुमति के बिना किसी को प्रव्रजित न करें ।

मैं--महाराज, इस विषय में मैं नियन्त्रण करने वाला हूं फिर भी इतना तो ख़याल रखना ही पड़ेगा कि जबतक इस प्रकार के श्रेष्ठ बलिदान नहीं किये जायेंगे तबतक विश्व--कल्याण या समाज-सेवा नहीं हो सकती ।

महाराज--भन्ते, जब आप इस प्रकार का दवाज़ा लगेंगे तब

आप से कौन प्रेम करेगा ? सब भय करेंगे। भयंकर बनने से कदाचित् सम्राट् बना जा सकता है पर तीर्थंकर या जनसेवक नहीं बना जा सकता। भन्ते, ऐसा कीजिये जिससे आप की तरफ़ से जगत निर्भय हो। आज तो नारियाँ इसलिये आपसे डरती हैं कि कहीं आप उनके पति या पुत्र न छुड़ालें, लड़के इसलिये डरते है कि कहीं आप उनके बाप न छीनलें, वृद्ध इसलिये डरते हैं कि कहीं आप उनके जवान बेटों का हरण न करलें, क्या इस भयपूर्ण वातावरण में सेवा का काम हो सकता है ? आप का तीर्थ क्या लोकप्रिय बन सकता है ?

मै-महाराज, जब हम ऊँचे से ऊँचा महल बनाना चाहते हैं तब पहिले नीचीसे नीची नींव खोदना पड़ती है। ध्येय ऊपर की ओर रहता है पर प्रारम्भिक कार्य नीचे की ओर होता है। इसी प्रकार लोकहित के कार्य में भी पहिले लोकविरोध सहन करना पड़ता है, उससे एक क्रान्तिकारी बुद्ध घबराता नहीं है। नींव का काम हो जाने पर जैसे कार्य की दिशा बदल जाती है उसी प्रकार क्रान्तिकारी का जनक्षोभ का कार्य पूरा हो जाने पर उसकी दिशा बदलती है। मेरे कार्य की दिशा भी बदलनेवाली है क्योंकि अब प्रारम्भिक कार्य समाप्त हो गया है। फिर भी एक बात ध्यान में रखना चाहिये, आपको ही नहीं समाज को ध्यान में रखना चाहिये कि जिस चीज़ की हम तारीफ़ करते हैं, जिस चीज़ से हम आकर्षित होते हैं उसकी पूर्ति अगर हमें करना पड़े तो हमें क्षुब्ध न होना चाहिये।

महाराज--इस का क्या मतलब है भन्ते।

मैं--मेरे संघ की आज तारीफ़ होती है, मेरी बात को लोग ध्यान से सुनते हैं, उसकी सुविधा सन्मान का भी ख़याल रखते हैं, उस तरफ़ आकर्षित होते हैं, उसकी बातों को यथाशक्ति जीवन में उतारने की कोशिश करते हैं इन सब का मुख्य कारण यही है कि मेरे संघ में अनेक महर्द्धिक लोग वैभव और जवानी का सुख छोड़कर शामिल होते हैं। इन्हें देखकर लोग सोचते हैं कि अगर इस संघ में कोई महत्ता और कल्याणकारकता न होती तो लोग धन वैभव और जवानी का आनन्द छोड़ कर शामिल क्यों होते? यह बात ठीक है या नहीं महाराज?

महाराज-हाँ, भन्ते ठीक है!

मैं-तब यह बतलाइये महाराज, कि मेरे संघमे वे महर्द्धिक युवक क्या आकाशसे बरसेंगे? दुनिया चाहती तो यह है कि जिस संघ में महर्द्धिक युवक हों उसी को अच्छा समझे, आप सरीखे बड़े बड़े महर्द्धिक भी उसी कसौटी पर संघ को कसते हैं, पर जब संघ की इसी विशेषताके लिये उन्हीं के घरसे सामग्री ली जाती है तब वे ही क्षुब्ध होते है। जगत इतना स्वार्थी है कि वह अपनी प्रसन्नता का बोझ सदा दूसरों के सिर पर लादना चाहता है पर इस तरह सभी लोग अगर विचार करें तो कौन लाभ उठा पायेगा? इसलिये उचित यह है कि या तो कोई माँग ही पेश न करना चाहिये अथवा जिस चीज़ की आवश्यकता हमें मालूम होती हो उसकी पूर्त्ति में हमें भी सहयोग देना चाहिये।

महाराज--परन्तु भंते, ऐसी माँग कौन करता है? क्या किसीने आपसे आकर कहा?

मैं– महाराज, ऐसी माँग कहकर नहीं की जाती, अपने व्यवहार से की जाती है। जिस चीज़ को आप आदर देंगे, पूजा करेंगे, प्रशंसा करेंगे उस चीज़की माँग आप पेश कर रहे हैं यही समझा जायगा। जगत मेरे संघ की जिस बातसे परीक्षा करेगा, जिसे देखकर वह मेरे सत्य को लेना चाहेगा वही बात संघ में लाना पड़ेगी। दुनिया अगर अपनी आँखें ठीक करले, वह सत्यको अपनी विवेक-बुद्धि से समझने की कोशिश करे, ऋद्धि-सिद्धि वैभव को सचाई की कसौटी न बनावे, तब मुझे सिर्फ़ कर्मठता की दृष्टिसे संघ में आदमियों की भरती करना पड़े, महर्द्धिक आदिका विचार न करना पड़े। मैं नहीं चाहता कि नवविवाहिता पत्नियाँ पतिहीन हो कर वैधव्य की यन्त्रणा सहें, पर करूं क्या, दुनिया ही मुझे विवश करती है। दुनिया की इस प्रकार की अनुचित माँगें ही धर्मसंस्थाओं के भीतर पापका बीज डलवातीं हैं, धर्मसंस्थाओं को दंभ, अन्धविश्वास तथा भौतिक वैभव का केन्द्र बनातीं हैं। यद्यपि मैं इस बीज को रहने न दूंगा पर दुनिया ने प्रारम्भ में थोड़ी बहुत मात्रा में वह आवश्यक बना दिया है।

महाराज–ठीक कह रहे हैं भन्ते, अब मैं अपनी भूल समझ रहा हूं।

मैं–महाराज, यह ख़ास आपकी भूल है सो बात नहीं है, यह जनता की साधारण बीमारी है, उसे अपनी बीमारी का प्रायश्चित्त करना ही चाहिये।

महाराज–परन्तु भन्ते, आपको खोकर ही मैंने अपनी बीमारी का पूरा प्रायश्चित्त कर लिया था। आप सैकड़ों राजकुमारों से बढ़कर हैं यह बात आज मैं ही क्या सारा जगत् मान रहा है, प्रायश्चित्त

के रूप में इतनी अमूल्य निधि देकर भी आज नन्द और राहुल क्यों देने पड़ रहे हैं ?

मैं—महाराज, मेरी अमूल्यनिधिता की पूरी परीक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक जनता की नजरों से मेरा सारा जीवन न गुजर जाय। आज शब्दों से अमूल्य निधि कहते हुए भी जनता यह कह सकती थी कि श्रमण गौतम पक्षपाती है वह दुनिया के घर उजाड़ता है परन्तु अपने घर से उसने एक भी आदमी नहीं लिया। यहाँ तक कि दुनिया की नज़र ऐसी तीक्ष्ण और विषैली है कि नन्द के ले लेने पर भी वह कह सकती थी कि श्रमण गौतम ने नन्द को तो लिया पर अपना बेटा छोड दिया उसने अपने बेटे के रास्ते का काँटा हटाया है, श्रमण गौतम गृहत्यागी है तो क्या हुआ बेटे के स्वार्थ की रक्षा के लिये अपना कुल बनाये रखने के लिये अब भी मरा जाता है। महाराज, निन्दा झूठी हो या सच्ची, पानी में पड़े हुए तेल की तरह जल्दी फैलती है यह निन्दा मेरी अमूल्य-निधिता धोडालती और आज जो लोग बाहर से जितनी निन्दा करते हैं उससे दस गुणी निन्दा भीतर से तब अवश्य करते जब मैंने नन्द और राहुल को न लिया होता। दुनिया दिल नहीं पढ़ सकती वह तो उसके कार्यों पर से कल्पना लड़ाया करती है और जहाँ उसका स्वार्थ नहीं रहता वहाँ किसी की भलाई तभी स्वीकार करती है जब बुराई ढूँढ़ने की कोशिश करते करते थकजाती है और बुराई नहीं ढूँढ़ पाती।

महाराज--ठीक कह रहे हैं भन्ते, आज जो मेरा घर उजड़ गया है उसमें आपका दोष नहीं है, दोष दुनिया का है, समाज की

मूढ़ता का है। मैंने जो आपको उलहना दिया उसका मुझे खेद है। अब मैं अपना उलहना वापिस लेता हूँ, आप जैसा उचित समझे करें।

मैं-- महाराज, मैंने यह नियम तो बना ही दिया है कि मातापिता आदि की अनुज्ञा के बिना किसी को प्रव्रज्या न दीजाय। यह नियम मुझे जल्दी ही बनाना था। हाँ, अगर आज आप न कहते तो यह नियम चार दिन बाद बनता परन्तु यह बनता अवश्य।

महाराज के चले जाने पर मैंने वह नियम बना दिया यह अच्छा ही हुआ। दवाई उतनी ही देना चाहिये जितनी से रोगी को वमन न हो जाय। अगर मैं इस प्रकार का नियम शीघ्र न बनाऊँ तो समाजरूपी रोगी इतना बेचैन हो जायगा कि वह मेरी औषध का वमन कर देगा।

[ १२ ]

स्वयंसेवकों की सेना पर्याप्त संख्या में इकट्ठी हो रही है। भिक्षु--संघ में शाक्य-कुमारों की भीड़ सी लग रही है। पर साथ ही साथ मेरी ज़िम्मेदारी और बोझ भी बढ़ रहा है। संघ में सच्चे त्यागियों की ज़रूरत है जिन में न तो अहंकार या अविनय हो न लोभ-लालसा हो। भिक्षुओं में प्रारम्भ में तो ये दुर्गुण मुरझाये रहते हैं परन्तु थोड़ी देर में फिर पनपने लगते हैं। एक पौधा जब एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाया जाता है तब वह मुरझाने लगता है बाद में वहां भी वह पाहिले की तरह पनपने लगता है। दुर्गुणरूप विषवृक्षों की भी यही दशा है वे गृहस्थाश्रमी हृदय से

हटकर जब श्रमणहृदय में पहुंचने हैं तब पहिले तो मुरझाते हैं बाद में फिर पनपते हैं। संघ में जो ग़रीब या दीन लोग आते हैं वे अपने पुराने जीवन से अधिक आराम साधु-जीवन में देखते हैं और इसी में रम जाते हैं। जो अमीर या विद्वान् आते हैं वे अपने त्याग का बदला अहंकार की पूजा द्वारा लेना चाहते हैं। आदर यश और नाम-कीर्तन के मारे मरे जाते हैं। आज जो मेरे चरण चूमते हैं वे ही कल मेरी कमाई पर अपना दावा सिद्ध करने के लिये अपनी सारी शक्ति लगाना चाहेंगे इस अन्याय का फल होगा संघ में साधुता का अभाव और विक्षोभ। इन महर्द्धिकों और कुलीनों से कल यही परेशानी होनेवाली है।

उस दिन जब शाक्यराज भद्दिय तथा अनुरुद्ध आनन्द भृगु किम्बिल और देवदत्त ये शाक्य युवक दीक्षित होने के लिये आये तब मुझे ऐसे ही विचार आने लगे इसलिये मैंने इनकी परीक्षा लेने का विचार किया। शाक्य-युवकों के साथ उनका एक सेवक उपालि नाई भी था वह उन से उम्रमें अधिक भी था और बुद्धिमान भी था। उसी को ज्येष्ठ बनाने के विचार से मैंने उन लोगों से पूछा। शाक्यपुत्रो! तुममें से पहिले किसे दीक्षा दी जाय?

भगवान् जिसे उचित समझें।

पहिले दीक्षित होने के लाभ तुम्हें मालूम हैं?

नहीं भन्ते।

देखो, श्रमणों का यह व्यवहार है कि जो पहिले दीक्षित होता है वह उम्र आदि में छोटा हो या बड़ा, वह पीछे के श्रमणों से बड़ा माना जाता है। जैसे गृहस्थाश्रम में बड़े भाई का आदर छोटे भाइयों

को करना पड़ता है उसी प्रकार पीछे के दीक्षितों को पहिले के दीक्षित का आदर सत्कार करना पड़ता है। तुम में से जो पहिले दीक्षित होगा उसका आदर सत्कार बाकी के लोगों को करना पड़ेगा। अब क्या कहते हो? शाक्यपुत्रो! किसे पहिले दीक्षित किया जाय

भगवान् जिसे उचित समझें।

तुम लोगों को जातिमद तो नहीं है? महर्द्धिकता का मद तो नहीं है? तुम अपने को शुद्ध मनुष्य समझने लगे हो या नहीं?

हाँ भन्ते।

यदि तुम्हारे इस सेवक उपालि नाई को मैं पहिले दीक्षित करूं और इसे दीक्षा में तुम्हारा बड़ा भाई बनाऊं तो तुम इस का विनय खुशी से कर सकोगे या नहीं?

कर सकेंगे भन्ते।

अच्छा अब यही तुम्हारा बड़ा भाई बना।

इसके बाद मैंने उपालि को ही पहिले दीक्षित किया। इन दिनों मैंने ग़ौर से देखा है कि शाक्य-पुत्र उसका विनय करते हैं। एक देवदत्त ही ऐसा है जो कुछ संकोच करता है। ऐसा मालूम होता है कि एक दिन यह देवदत्त संघ के लिये विपत्ति सिद्ध होगा। देवदत्त में नाम-मोह बहुत है। मैं समझता हूं कि अगर इसका वश चले तो वह हरएक साधु के कमण्डलु पर देवदत्त देवदत्त ही लिखा डाले। देखता हूं कि वह जिस आम के झाड़ के पास रहता है उस झाड़ पर उसने अनेक जगह देवदत्त लिख डाला है, अपने आसन के चारों तरफ़ उसने ईंट के टुकड़े इस तरह सजाये हैं कि

देखनेवाला पढ़कर तुरन्त कह सके कि यहां देवदत्त आसन लगाते हैं। जब वह झाड़ू लगाता है तब इस ढंगसे लगाता है मानों जमीन पर देवदत्त लिख रहा हो। देवदत्त शब्द का प्रयोग लोगों द्वारा नाना अर्थों में दिन में बीसों बार करता है, जब वर्षा होती है तब वह यह नहीं कहता कि वर्षा हो रही है, कहता है देवदान हो रहा है। धीरे धीरे वह ईश्वरवादी भी इसीलिये बनता जा रहा है जिसमें देवदत्त शब्द का प्रयोग करने का अवसर मिले। कहा करता है सारी भलाइयां देवदत्त हैं अर्थात् देवने-ईश्वरने-दीं हैं। वह सारिपुत्र उपालि आदि का अतिक्रमण करना चाहता है। उस दिन नगर में जब भिक्षा के लिये गया तब किसीने पूछा—यह किसका संघ है, किसने बनाया है? तब देवदत्तने कहा—यह हम लोगों का श्रमण-संघ है, हम लोगों ने इसे इसलिये बनाया है कि मनुष्य को मध्यम-मार्ग दिखायें आदि। दूसरे साधु इस अवसर पर इस प्रकार उत्तर देते हैं कि यह भगवान् बुद्ध का संघ है, भगवान् ने राज-वैभव छोड़ कर छः वर्ष तपस्या करके यह दिव्यज्ञान पाया है, हम लोग उन्हीं के शिष्य हैं। उन भगवान् के मन में प्राणिमात्र के कल्याण करने की भावना है, वे ऊंचनीच सब से प्रेम करते हैं और मध्यम-मार्ग का प्रचार करते हैं।

इन साधुओं के उत्तर से लोगों को ऐसा लगता है कि इस संघ के मूल में कोई असाधारण महान् पुरुष है जिसकी छाया में जाकर हम राज्यवैभव के सुखसे अधिक सुख पायेंगे। जब कि देवदत्त के उत्तर से यह मालूम होता है कि यह संघ अनायक है इस के मूल में कोई असाधारण व्यक्ति नहीं है, देवदत्त सरीखे दो

चार चञ्चल युवकों ने यह दूकान खोल ली है। इसप्रकार देवदत्त सब को अतिक्रमण करने की धुन में संघ को गिरा रहा है। यद्यपि शब्दों की दृष्टि से यह बहुत छोटीसी बात है, परन्तु शब्द-भेद से जो जनता के मन पर प्रभाव का अन्तर पड़ता है वह ज़मीन आसमान के समान है। शाक्यों में जितने लोग प्रव्रजित हुए हैं उन में यह देवदत्त ही ऐसा है जो न्याय अन्याय औचित्य अनौचित्य की पर्वाह किये बिना अपने त्याग की एक एक कौड़ी का फल ब्याज दरब्याज सहित प्रतिदिन लेता रहता है। पर एक दिन वह देखगा कि इतना फल पाकर के भी इसने कुछ नहीं पाया। लोगों के मनपर वह महत्त्व की छाप लगाना चाहता है पर उससे उसने लघुत्व और घृणा ही पाई है।

परन्तु उपालि देवदत्त से बिलकुल भिन्न है। इस की महत्त्वाकांक्षाएँ बिलकुल आध्यात्मिक हैं यह मेरे सिद्धांतों को अच्छी तरह पढ़ना चाहता है पढ़ता भी है, बड़ा विनीत है, जातिमद तो उसे होगा ही क्या नाम-मोह भी बिलकुल नहीं है। एक दिन अवश्य ही यह महान् श्रुतधर बनेगा और मेरे साहित्य को सुरक्षित रक्खेगा और अर्हंत बन जायगा।

आनन्द एक विचित्र प्रकृति का युवक मालूम होता है। कुछ बिगड़ेदिलसा है, थोड़ा उत्तेजित हो जाता है फिर भी इसके दिल में संघ के विषय में और मेरे विषय में काफ़ी अनुरक्ति है। इस की उत्तेजना स्थायी नहीं होती यह संघ का ख़ास आदमी बनेगा पर अपनी चपलता और उत्तेजन-शीलता के कारण ख़ास आदमी बन कर के भी, मेरी बहुत सेवा करके भी, लाञ्छित होता रहेगा।

यह जो शाक्यों का राजा भद्रिक है यह बड़ा निर्दोष मालूम होता है। कल कुछ भिक्षुओं ने आकर मुझसे कहा-भद्रिक एकान्त में बैठ कर उदान कहा करते हैं--अहाहा, कैसा आनन्द है कैसा सुख है ! मैंने भद्रिक को बुलवाकर पूछा--भद्रिक क्या सचमुच तुम ऐसे उदान कहते हो ? अगर कहते हो तो क्यों कहते हो ?

भद्रिक--हाँ भन्ते, जबसे मैं भिक्षुक हुआ हूं तबसे मुझे बड़ा आनन्द, बड़ी निराकुलता मालूम होती है जब मैं राजा था तब मुझे डरके मारे रात के नींद नहीं आती थी। शाक्य बड़े चंड होते हैं, न मालूम कब किसको रोष आ जाय और वह साधारण कारण से धोखे में या और किसी तरह मेरा धन लूटले, प्रजा में विद्रोह पैदा करदे, इन्हीं कारणों से भन्ते, मैं दिन रात बेचैन रहता था, स्वादिष्ट व्यञ्जनों का भी मुझे स्वाद नहीं आता था, कोमल शय्या भी चुभती थी। अपने से बड़े राजाओं की ईर्ष्या भी होती थी, कभी कभी उन को सिर भी झुकाना पड़ता था, वैभव के भीतर भी मैं नरक के दुःख और कारागार की पराधीनता भोग रहा था। परन्तु यहां आकर भन्ते, मुझे कहीं भी भय नहीं मालूम होता, मैं अरण्य में भी, शून्यागार में भी, नगर के बाहर भी बिलकुल निर्मम, अनुद्विग्न और निश्चिन्त रहता हूं।

मैं--भद्रिक, पर तुम्हें क्या इस बात का विचार नहीं होता कि पहिले हर बात के लिये लोग तुम्हारा मुँह देखते थे परन्तु अब तुम्हें दूसरों का मुंह देखना पड़ता है, भिक्षा में रोटी के एक एक टुकडे का विचार करना पड़ता है। छोटे से छोटा काम तुम्हें अपने

हाथ से करना पड़ता है दूसरों की छोटी छोटी सेवा भी करना पड़ती है, इतना ही नहीं दूसरों के उलहने भी सुनना पड़ते हैं, प्रिय हो या अप्रिय अपने दोषों की आलोचना सुनना पड़ती है । इससे क्या तुम्हारा मन खिन्न नहीं होता ?

भन्ते, कभी कभी ऐसे निःसार विचार आते हैं परन्तु वे अपनी निःसारता बताने के लिये ही आते हैं उनसे खेद नहीं होता। पहिले मुझमें राज मद था इसलिये सेवा से, आलोचना से मुझे अपमान मालूम होता था परन्तु जब से आपने मैत्री-भावना का पाठ पढ़ाया है, सेवा में मुझे आनन्द ही मालूम होने लगा है । जब मैं छोटों की सेवा करता हूँ तब मैं एक माता की याद करता हूँ जो अपने बच्चे की सेवा करके अपने को अपमानित या तुच्छ नहीं मानती बल्कि गौरव का अनुभव करती है। जब मैं बड़ों की सेवा करता हूँ तब मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे बालक अपने बाप की सेवा करता है । भन्ते, अपमान वहीं मालूम होता है जहां अपने मन में मद हो। एक बात और है भन्ते, पहिले जब मैं राजा था तब कोई छोटा काम करने से लोग मुझे छोटा, दीन या कंजूस समझते थे—मेरी निन्दा करते थे परन्तु अब उन्हीं कामों से मुझे सेवाभावी, विश्वप्रेमी, विनीत साधु समझकर प्रशंसा करते हैं तब मुझे अपमान कैसे मालूम होगा ? मनुष्य मान-अपमान का विचार दुनिया की नज़र में ऊँचा उठने के लिये करता है। जब दुनिया की नज़र ही अपने विषय में बदल गई तब अपमान होना ही बन्द हो गया फिर उसकी चिन्ता क्यों की जाय ?

रही आलोचना सो आलोचनाओं से ही तो मैंने इस तत्त्वको समझ पाया है और आज मैं अपने को एक राजा से भी अधिक सुखी सन्तुष्ट और समुन्नत समझता हूँ।

मैं— साधु साधु ! भद्रिक, तुमने सुखके मर्म को समझ लिया है, गौरव के मर्म को समझ लिया है, जीवन सफल बना लिया है।

इस प्रकार भद्रिक सच्चा साधु बनगया है परन्तु राहुल में अभी सच्ची साधुता नहीं आने पाई वह मेरा पुत्र है शायद यही बात उसकी साधुता में बाधक हो रही है। उस में जो सबसे बड़ा दोष है वह है झूठ बोलने का। मेरे सामने भी वह अपना दिल नहीं खोलता। जब मैं उसका कोई दोष पकड़कर बताता हूँ तब भी वह स्वीकार नहीं करता, कोई न कोई बहाना बनाता है। जब मैं उसका कोई दोष इस तरह पकड़लेता हूँ कि वह बहाना न बना पावे या उसके छल की निःसारता बताता हूँ तब भी वह पश्चात्ताप प्रगट नहीं करता या कभी ऐसे शब्दों में प्रगट करता है मानों पश्चात्ताप प्रगट करके मुझपर दया कर रहा है उसका अर्थ या भाव पश्चात्ताप का नहीं होता। वह इतना भोला है कि अभी तक वह यह नहीं समझता कि अगर कोई मनुष्य अपना बाल भी हिलावे तो तथागत (बुद्ध) से उसका मतलब छिपा नहीं रह सकता और तब तक कोई मनुष्य पवित्र नहीं बन सकता जब तक उचित स्थान पर भी वह शुद्ध आलोचना न कर सके। अर्थ-हीन आलोचना अनालोचना से भी बुरी होती है। अभी उस दिन जब मैंने उसकी असत्यता प्रमाणित कर दी तब भी उसने शुद्ध अन्तःकरण से अपराध स्वीकार न किया, यही कहता रहा आप बड़े हैं, आप मुझे

अपराधी समझते हैं तो अपराधी सही, मैं दंड भोगने को तैयार हूँ। इस तरह विनय की ओट में उसने अपराध छिपाया। और कभी कभी जब उसमें इतना सा निष्प्राण विनय भी नहीं रहता है तो गर्जकर कहने लगता है कि मैं आपका बेटा हूँ फिर भी आप विश्वास नहीं करते मानों गर्जने से उसकी विश्वसनीयता बढ़ती हो। विश्वसनीयता विश्वसनीय कार्यों से बढ़ेगी, छलरहित होकर अपने हृदय को खोलने से बढ़ेगी पर राहुल इस बातको नहीं समझता। इसलिये कल मैं अम्बलट्ठिका में गया और एकान्त में राहुल को समझाया।

मैंने कहा-किसी राजा का हाथी लड़ाई के मैदान में जाकर पैरों से काम ले, पूँछ से काम ले किन्तु सूंड को पेट के नीचे दबाकर रह जाय तो क्या उसकी सेवा मूल्यवान् होगी? क्या वह विश्वसनीय होगा?

राहुल—नहीं भन्ते।

मैं—तो देखो राहुल, जो आदमी शरीर के सभी अंगों से सेवा करता है परन्तु मन को छिपा रखता है, छल करता है. झूठ बोलता है वह विश्वसनीय नहीं हो सकता है। उसकी और सेवाओं का भी मूल्य नहीं के बराबर ही हो जाता है। राहुल तुझे प्रत्यवेक्षण अवश्य करते रहना चाहिये, तुझे देखते रहना चाहिये कि जो कार्य करता हूँ उससे लालसा की या अहंकार की पूजा तो नहीं होती, किसी के प्रति अन्याय तो नहीं होता। शायद ये बातें तेरी समझ में न आवें तो तुझे शास्ता (बुद्ध) के पास या किसी विज्ञ-गुरु-भाई के पास अपनी मनोवृत्ति खोलकर बता देना चाहिये अगर कभी वे तुझ से पूछें तो झूठ तो कभी भी न बोलना चाहिये। जो शास्ता के सामने या गुरु के सामने झूठ बोलता है उसकी साधुता व्यर्थ जाती है। जैसे

कोई रोगी वैद्य को अपनी बीमारी न बतावे या उसके चिह्न छिपावे तो इससे रोगी का ही नाश होगा इसी प्रकार उस श्रमण का भी नाश होता है जो शास्ता के सामने भी अपने अपराधों को छिपाता है, झूठ बोलता है, वचनछल करता है । इसलिये राहुल तुझे प्रत्यवेक्षण सीखना चाहिये ।

मेरी बातों से राहुल का चेहरा फीका पड़ गया वह कुछ चिन्तातुर हो गया । पर मैं समझता हूँ अब वह अपने दोष अच्छी तरह समझ गया है । सम्भवतः अब वह प्रत्यवेक्षण अवश्य करेगा, छल न करेगा, सच बोलेगा ।

इस समय मेरे संघ में नाना तरह के इतने मनुष्य आ गये हैं, उनकी मनोवृत्तियाँ ऐसी विचित्र हैं कि अन्य संस्थाओं-वालों को भी सब नमूने यहाँ मिल जाँयँगे । पर मुझे तो इन सब की चिकित्सा करना है । परन्तु चिकित्सा के कार्य में श्रद्धा मुख्य है । जब तक वैद्य की योग्यता और चिकित्सा के विषय में और उसकी निर्दोषता पर रोगी को श्रद्धा न होगी वह वैद्य से लाभ नहीं उठा सकता ।

शाक्य-कुमारों को मैंने इसीलिये एकत्रित करके पूछा था— शाक्यपुत्रो, क्या तुम सोचते हो कि तथागत के चित्तमल नहीं छूटे हैं क्योंकि वे तपस्या नहीं करते, साधारण जनके समान कभी एक को स्वीकार करते हैं कभी दूसरे को, कभी किसीपर प्रसन्न होते हैं कभी किसी पर अप्रसन्न ।

अनुरुद्ध— नहीं भन्ते, हम ऐसा नहीं समझते हम समझते हैं कि तथागत के चित्तमल छूटगये हैं । विश्व-मैत्री के कारण वे जगत्

का सुधार करना चाहते हैं इस के लिये हम लोगों की चिकित्सा करते हैं। प्रसन्न और अप्रसन्न भी वे इसीलिये होते हैं जिससे हम लोग किसी काम की बुराई या भलाई समझ सकें। जैसे पशुको ठीक रास्तेपर चलाने के लिये द्वेष न होने पर भी यष्टि या कशा से ताड़ने का दृश्य बताना पड़ता है, कभी कभी ताड़न भी करना पड़ता है उसी प्रकार हम लोगों को सुराह पर लाने के लिये तथागत को सब करना पड़ता है। इससे तथागत के चित्तमल सिद्ध नहीं होता। किन्तु विश्वमैत्री-जन्य चिकित्सकता सिद्ध होती है।

मैं—साधु साधु! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत को अच्छी तरह समझ लिया है ऐसी ही मनोवृत्ति से तुम तथागत के जीवन से लाभ उठा सकोगे। परन्तु जब कोई पृथग्जन तुमसे आकर यह पूछे कि तथागत तपस्या नहीं करते, वे उतना कष्ट भी नहीं उठाते जितना उनके शिष्य उठाते हैं ऐसी हालत में तथागत शास्ता कैसे हो सकते हैं? तब तुम क्या कहोगे? शाक्यपुत्रो!

अनुरुद्ध--भन्ते, हम कहेंगे कि तथागत के मार्ग में अनावश्यक देहदंड वर्जित है। अनावश्यक दुःख उठाने से धर्म नहीं हो जाता। असली तपस्या मनकी है सो तथागत महातपस्वी हैं क्योंकि वे मनको पूरी तरह वश कर चुके हैं। सारे शिष्यों की तपस्या तथागत की तपस्या के पासंग बराबर भी नहीं है। हम लोग प्रयत्न कर के यमनियमों के अनुसार चलते हैं पर तथागत जैसे चलते हैं वैसे यमनियम बनते हैं। उनका जीवन इतना पवित्र है कि उन्हें यमनियमों की चिन्ता नहीं करना पड़ती।

मैं--साधु साधु ! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत को समझने के साथ तथागत के धर्म को भी अच्छी तरह समझा। पर क्यों शाक्यपुत्रो, अगर कोई पृथक्‌जन तुमसे कहे कि मैं भी तथागत हूँ या उनके समान हूँ, मैं भी यम नियमों की पर्वाह नहीं करता तो तुम उससे क्या कहोगे ?

अनुरुद्ध--भन्त, रोगी मनुष्य को जिस प्रकार पथ्य की ज़रूरत होती है उस प्रकार नीरोग को नहीं होती। नीरोग को देखकर अगर रोगी दावा करने लगे कि मैं भी पथ्य न करूंगा, मैं नीरोग हूं तो उसका दावा व्यर्थ है। इससे उसका रोग ही बढ़ेगा और वह मर जायगा। जो तथागत नहीं है किन्तु तथागत के समान होने का दावा करके यमनियम रूप पथ्य का सेवन नहीं करता उसका पतन होगा उसका चित्तमल बढ़ेगा और अन्त में वह दुनिया की नज़र में भी गिर जायगा। हम लोग दावा करने से ही किसी को तथागत के समान शुद्ध नहीं मानेंगे, उसके चित्तमल की परीक्षा करेंगे। इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना अगर वह दावा करेगा तो उसे दम्भी समझेंगे।

मैं--साधु साधु ! शाक्यपुत्रो, तुमने तथागत के धर्म से विवेक भी सीख लिया है। अब तुम लोग जाओ और इसी प्रकार विनय और विवेक को बढ़ाने का सदा प्रयत्न करो।

शाक्यपुत्रों के उत्तरों से मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। संघ में ऐसे लोगों की जितनी बहुलता होगी संघ उतना ही महान् और प्रभावशाली बनेगा, जनता इससे उतना ही अधिक लाभ उठा सकेगी।

( १४ )

साधु होना एक बात है और साधुसंघ के सदस्य होना बात दूसरी। मेरे संघ में ऐसे लोग भी आगये हैं जिनमें न तो विनय है न त्याग। घर द्वार छोड़कर आये हैं पर घर द्वार का मोह अभी भी नहीं छूटा है। इन लोगों में इतनी नीचता और अविनय है कि बड़े से बड़े त्यागी साधुओं की भी पर्वाह नहीं करते। कुछ भिक्षु ऐसे नीच हैं कि विहार की सब अच्छी अच्छी जगहें पहिले से जाकर ले लेते हैं और ख़ास ख़ास साधुओं को बैठने को जगह भी नहीं मिलती। आज जब सुबह मैं उठा तो देखा सारिपुत्र विहार के बाहर एक झाड़के नीचे बैठा है। पूछने पर पता लगा कि जगह न मिलने से उसे रातभर बाहर रहना पड़ा। कैसे आश्चर्य की बात है! सारिपुत्र मेरा सब से प्यारा शिष्य है बहुत से भिक्षुओं को गुरु के समान है पर इन सब भिक्षुओं में इतना भी विनय नहीं है कि सारिपुत्र को बैठने के लिये जगह छोड़ दें।

ये लोग मेरी साधु संस्था में इसलिये आये हैं कि ये जगत को बतलायें कि आदर्श मानव जीवन कैसा होता है, पशुबल की अपेक्षा न्यायबल ही महान् है, धन यश आदर सत्कार भोग उपभोग आदि की खींचातानी में सुख नहीं है किन्तु औचित्य के अनुसार समर्पण करने में ही सुख है; पर ये मोघ पुरुष जब स्थान के लिये इस तरह छीनाझपटी करते हैं, उदार गम्भीर और महान् सेवक अपमानित होते हैं, उनको इस बात की चिन्ता रखना पड़ती है कि विहार में हमें स्थान मिलेगा या नहीं, इस प्रकार गुण-गुरुओं का अपमान करनेवाले ये नालायक जगत को क्या

सिखायेंगे ? जगत का क्या सुधार करेंगे ? अब तो मुझे नये विहार में प्रसन्नता के बदले स्थान की चिन्ता लेकर घुसना पड़ेगा और सब के मनमें एक ही मुख्यचिन्ता रहेगी कि हमें उपयुक्त स्थान मिलेगा या नहीं ? यह भी हो सकता है कि किसी दिन ये मेरे लिये भी उपयुक्त स्थान न छोड़ें । जब कोई संघ के दर्शनार्थ आवे और मेरे स्थानपर इन्हें देखे तो क्या कहे ? संघ बर्बाद होजाय ।

गृहस्थों में भी मोह ममता स्वार्थ संघर्ष होते हैं पर इन भिक्षुओं सरीखे भुखमरे गृहस्थ भी बहुत कम होंगे । उनमें विनय होता है, अविनय उसी का करते हैं जिसे समझते नहीं या बुरा समझते हैं, नासमझी में भी शिष्टाचार का पालन तो करते ही हैं पर ये नालायक भिक्षु विनय तो जानते ही नहीं पर शिष्टाचार का पालन भी नहीं करते । अगर मेरा संघ ऐसा ही अशिष्ट रहा तो दुनिया के लिये यह बोझ हो जायगा और जल्दी नष्ट हो जायगा । आज मैंने इनको बुलाकर काफ़ी फटकारा और निम्न लिखित बातें और विनयके नियम सिखाये ।

## विनय-पात्र

१--जो तुमसे दीक्षा में ज्येष्ठ हो वह तुम्हें वन्दनीय है ।

२--जो धर्मपालनमें श्रेष्ठ हो वह वन्दनीय है ।

३--जो संघ-सेवामें श्रेष्ठ हो वह वन्दनीय है ।

४--जो आचार्य उपाध्याय पद पर हो वह वन्दनीय है ।

५--तथागत समस्त भिक्षु--संघ से और समस्त लोक से वन्दनीय है ।

## विनय-नियम

वन्दनीय गुरुओं का विनय इस तरह करना चाहिये ।

१ मिलने पर खड़े हो जाना, हाथ जोड़ना, कुशल प्रश्न पूछना।

२ जबतक वे तुमसे बातचीत कर रहे हों या पास में खड़े हो तबतक खड़े रहना ।

३ अगर उन्हें देर तक काम हो या चंक्रमण कर रहे हों और वहीं तुम्हें बैठकर काम करना हो तो उनके लिये श्रेष्ठ आसन खाली छोड़ कर दूसरे आसन पर बैठकर काम करना ।

४– जाते समय उठ खड़े होना, हाथ जोड़ना ।

५– भिक्षा में मिला हुआ अन्न पहिले उन्हें देना ।

६– शय्या स्थान आदि उन के लिये सुरक्षित रखना, जब उन्हें मिलजाय तब बचे हुए स्थान का स्वयं उपयोग करना ।

७– ऐसा व्यवहार न करना जिससे वन्दनीयों को लोग वन्दनीय समझने में भ्रम करने लगें उनमें और तुममें अन्तर न मालूम हो ।

८– सिर्फ़ रास्ता बताने आदि के लिये उन के आगे चलना अन्यथा सदा पीछे चलना ।

९– यथाशक्य उनकी सेवा करना ।

१०– वे कोई काम कर रहे हों और वह अपने करने योग्य हो तो खुद करने लगना । जैसे शय्या साफ़ करते समय उन की शय्या साफ़ कर देना, बुहारते देख बुहार देना आदि ।

११– नम्रता से उत्तर देना । उत्तर देते समय घृणा से मुँह सिकोड़ने से, स्वर को रूखा करने से, दुष्कृत की आपत्ति होगी ।

तथागत के विषय में इस नियमों का पूरी तरह पालन करना चाहिये, उपाध्याय आदि के विषय में भी करीब करीब इसी तरह, और अन्य वन्दनीयों को इस से कुछ कम।

भिक्षुओ, ये ज़रूरी विनय-नियम तुम्हारे लिये बनाये गये हैं। इनका पालन मन से होना चाहिये। अगर सिर्फ़ ऊपर से ही पालन करोगे, अर्थात् सिर्फ़ शिष्टाचार बताओगे तो तुम विनयी और संयमी नहीं हो सकते। विनयहीन शिष्टाचार से वात्सल्य प्रेम आदि नहीं मिलता और शिष्टाचार भी न करने से वैर बढ़ता है। विनय प्राण है, शिष्टाचार उसका शरीर है, तुम्हें दोनों रखना चाहिये।

इस प्रकार भिक्षुओं को मैंने विनय के नियम बता दिये हैं कदाचित् वे उसका पालन करेंगे। व्यवहार का मूल विनय है। संघ की व्यवस्था के लिये विनय की बड़ी ज़रूरत है। परन्तु यन्त्र की तरह परिचालित होकर जो विनय-नियमों का पालन करते हैं वे क्या सच्चे विनयी हैं? सच तो यह है कि सच्चा विनयी जैसा आचरण करता है वैसे नियम बनते हैं, अर्थात् विनय-नियम मैंने बनाये हैं उनका पालन विनयी स्वभाव से करता है। जैसे मनुष्य जब किसी से डर जाता है तब आपसे आप काँपने लगता है, दूर भागने की कोशिश करने लगता है, पकड़े जानेपर दीनता बताने लगता है; भीत को भयाचार सिखाने की ज़रूरत नहीं होती, उसी प्रकार विनयी को विनयाचार सिखाने की ज़रूरत नहीं होती। विनयी विनयाचार के ज्ञान के बिना ही उठ खड़ा होता है, हाथ जोड़ता है, सेवाके लिये आगे आगे आता है, उच्चासन वगैरह देता

है ये सब बातें सिखाना नहीं पड़तीं; ये सिखाना पड़तीं हैं उन्हें जो विनयी नहीं है और विनय का व्यवहार करना चाहते हैं। वास्तवमें साधुओं के लिये इन नियमों की ज़रूरत नहीं थी पर ये मोघ पुरुष साधु हैं कहाँ ? इसालिये व्यवस्था के लिये नियमपालन कराना ही उचित है ।

आखिर अनिच्छापूर्वक मुझे भिक्षुणी-संघ की स्थापना करना पड़ी । आनन्द ने बार बार अनुरोध करके मुझ से आज्ञा ले ही ली । आनन्द बहुत मूर्ख है वह दीर्घदृष्टि नहीं है । मैं मानता हूँ कि स्त्रियाँ अर्हत् पद प्राप्त कर सकतीं हैं अनेक बार मैंने यह बात कही भी है पर भिक्षुसंघ का उद्देश्य ऐसे जनसेवक तैयार करना है जो पवित्र जीवन बिताकर समाज की बुराइयाँ दूर करें। अर्हत् पद तो क्या स्त्रियाँ क्या पुरुष घर में रह कर भी पा सकते हैं पर घर में समाज को ऐसे साधु सेवक नहीं मिल सकते जो निष्परिग्रह हों, निर्भय हों निस्वार्थ हों, राजा रंक को समदृष्टि से देखते हों। । इसीलिये मैंने यह धर्म-सेना खड़ी की है । यह सेना या तो स्त्रियों स्त्रियों की ही होना चाहिये थी या पुरुषों पुरुषों की ही । पुरुषों की सेना में कुछ सुविधा अधिक थी और मैं स्वयं पुरुष हूँ इसलिये पुरुष-सेना का सञ्चालन ही अच्छी तरह से कर सकता हूं इसलिये मैंने यह पुरुष सेना बनाई। स्त्री और पुरुषों की सेना बनाने से यहाँ भी वही संसार बन जायगा जिसे छोड़कर ये भिक्षु मेरे पास आये हैं । बल्कि घर में मनुष्य लोक से निर्भय हो कर दाम्पत्य बिता सकता है भिक्षु-संघ में तो दाम्पत्य को जगह नहीं है इसालिये यह आकर्षण अन्तर्गामी हो जायगा और धीरे धीरे संघ को खोखला कर देगा ।

अभी उसदिन एक भिक्षु एक भिक्षुणी के निवासस्थान के सामने चक्कर मार रहा था। कभी वहाँ खड़े खड़े दतौन करता था, कभी वहाँ से पानी लेने जाता था। मैंने इस प्रकार करने को मना किया। तब मैंने देखा कि वह अवसर अनवसर का विचार किये बिना उस भिक्षुणी की तारीफ़ ही करता है उसकी चर्चा करने का अवसर बनाया करता है वह बड़ी शीलवती है बड़ी गुणवती है बड़ी विदुषी है, अच्छा शंका-समाधान करती है अच्छा बोलती है। निःसन्देह वह ऐसी ही है, वह ऐसे भिक्षुओं का शिकार भी न बनेगी पर इससे कुछ न कुछ लैंगिक आकर्षण तो बढ़ता ही है।

कोई चर्चा करने के बहाने भिक्षुणियों के पास जाते हैं, कोई उन्हें परेशान करके उनकी झिड़कियों का मज़ा ही लूटना चाहते हैं, कोई विनय का ढोंग करके उनके हाथ जोड़ने जाते हैं, कोई किसी चतुर भिक्षुणी से उपदेश सुनने के बहाने जाते हैं। मैंने इन सब बातों की मनाई करदी है। कोई भिक्षु भिक्षुणियों का विनय न करे उनका उपदेश न सुने, कोई भिक्षुणी भिक्षुको झिड़कियाँ न बताये गाली गलौज न करे आदि। पर क्या इन नियमों से दोनों का आकर्षण कम हो जायगा? बहाना सबसे सुलभ वस्तु है। मैं सौ नियम बनाऊँगा तो एकसौ एकवाँ बहाना निकल आयगा। नियम तो रास्ता बताते हैं; चला नहीं सकते। जिन भिक्षुओं में संयम नहीं है वे नियमों में क़ैद नहीं हो सकते। मुझे तो ऐसा लगता है कि भिक्षुणियों से संघकी शीघ्र अवनति होगी। धीरे धीरे संघ पापाचार का घर बन जायगा। संघ की जन-संख्या दूनी हो जायगी पर संघ का जीवन आधा ही रह जायगा

और पवित्रता तो नामशेष ही समझो। आनन्द ने भलाइ करने का जो प्रयत्न किया है वह कई गुणी बुराई का कारण होगी।

(१५)

धर्म का कार्य है प्राणिमात्र को सुखशान्ति देना। जो इस मार्ग पर अधिक से अधिक चलता है, इस के लिये अधिक से अधिक त्याग करता है वही सच्चा धर्मात्मा है। पर दुनिया ऐसी अंधी है कि धर्म का पालन करना तो दूर उस की कसौटी भी अच्छी तरह नहीं कर सकती। कोई किसी के वैद्यकज्ञान से धर्म की परीक्षा करता है कोई ज्योतिषज्ञान से धर्म की कसौटी करता है कोई नटकला आदि से। इस मूढ़ता का कुछ ठिकाना है! आत्मशुद्धि और जनसेवा इन के बिना भी होती है और इनके होने पर भी नहीं होती फिर भी लोग ऐसी ही बातों से धर्म की कसौटी करते हैं।

उसदिन राजगृह के नगरसेठ को यही पागलपन सूझा-उसने एक चन्दन का पात्र बनवाकर एक लम्बे बाँसपर लटका दिया और जो कोई भिक्षु आता उससे कहता अगर आप अर्हत् हैं तो आप बाँसपर चढ़कर पात्र लीजिये। मानो अर्हत्पन की कसौटी बाँसपर चढ़ने योग्य नटकला हो। ये मूर्ख इतना भी नहीं समझते कि कोई भी नट बाँसपर चढ़कर पात्र उतार सकता है तो क्या वह अर्हत् हो जायगा? और अर्हत भी बाँसपर चढ़ने की कला या शक्ति से वञ्चित हो सकते हैं तो क्या वे अनर्हत् हो जाँयँगे। वह सेठ भी मूर्ख, दुनिया भी मूर्ख और मेरे बहुत

से शिष्य भी मूर्ख । मेरे शिष्यों में से वह पिंडोल भारद्वाज उस सेठ के यहाँ जा पहुँचा उसने नट की तरह बाँसपर चढ़कर पात्र उतार लिया। उसने समझा कि बड़ी धर्म-प्रभावना हो गई । भीड़ उसके पीछे लग गई, पिंडोलने समझा मैं सचमुच अर्हत् हो गया ।

यदि पिंडोल सरीखे मूर्ख शिष्य धर्म की ऐसी ही प्रभावना करने लगेंगे तो धर्म में सच्चे त्यागियों और समाजसेवकों को स्थान ही न रह जायगा। धर्मसंस्था नटों का अखाड़ा हो जायगी इसलिये भिक्षु संघको बुलाकर मैंने सबके सामने पिंडोल को डाँटा और उसके चन्दन के पात्र के टुकड़े टुकड़े करवा दिये ।

मैंने तो लकड़ी के पात्र की इसलिये अनुज्ञा दी थी कि वह कीमती नहीं होता इसलिये भिक्षु का अपरिग्रह व्रत पलता रहता है । पर इस बहाने चन्दन के पात्र रक्खे जाने लगें तो धातु के पात्र भी इससे सस्ते होंगे और उनमें निष्परिग्रहता अधिक होगी अन्यथा इन भिक्षुओं की साधुता तो साँप की तरह चन्दन के पात्र से ही लिपटकर रह जायगी । इसलिये मैंने नियम कर दिया कि अब कोई भिक्षु लकड़ी के पात्र भी न रक्खे, धातु के पात्र भी न रक्खे सिर्फ लोहे के और मिट्टी के पात्र रक्खे ।

मैं सोचता था कि अपनी धर्मसंस्था में कड़े नियम बनाकर अपनी धर्मसंस्था को पवित्र रख सकूँगा पर देखता हूँ कि इससे काम नहीं चलता । कल राजा बिम्बसार मेरे पास आया और बोला-क्या आपने शिष्यों को चमत्कार बताने की मनाई की है ? इससे तो धर्मप्रचार में बड़ी बाधा पड़ेगी ।

मैंने कहा-- चमत्कार (पाटिहारिय-प्रातिहार्य) से मनुष्य की बदमाशी का परिचय मिलता है धर्म का परिचय नहीं।

बिम्बसार-- यह ठीक है परन्तु जब तक दुनिया इस तत्त्व को नहीं समझती तब तक तो उसे उसी के रास्ते से खींचना पड़ेगा। अगर वह चमत्कार से सत्य को पाती है तो उसे उसी रास्ते से पाने देना चाहिये।

मैं-- राजन्, चमत्कार खुद इतना बड़ा असत्य है कि उसके घुसजाने पर और सत्य को जगह ही नहीं रह पाती। जो लोग ऐसे चमत्कार को नमस्कार करते हैं और समझते हैं कि हम सत्य को नमस्कार करते हैं वे लोग स्वयं धोखा खाते हैं और दुनिया को भी धोखा देते हैं। चमत्कार तो एक कला है, छल है, इन्द्रजाल है, इसे कोई भी इन्द्रजालिया दिखला सकता है पर इन्द्रजालिया अर्हत् नहीं होता, अर्हत् होने के लिये आत्मशुद्धि की आवश्यकता है, इन्द्रजाल आदि चमत्कारों की नहीं।

बिम्बसार-- यह ठीक है भगवन्, पर आप के शिष्य तो चमत्कार बतलायेंगे नहीं और दूसरे लोग चमत्कार बतलायेंगे तब इस का परिणाम यह होगा कि जनता उन्हीं इन्द्रजालियों के चक्कर में फँस जायगी और आपके सत्यधर्म से विमुख हो जायगी।

मैं-- जनता सत्यधर्म से विमुख हो जाय तो इसका अर्थ इतना ही होगा कि सत्यधर्म का लाभ थोड़ेसे ही लोग उठा सकेंगे पर जनता सत्यधर्म में घुसकर सत्यधर्म का असत्यधर्म बनादे तो इस का फल यह होगा कि न तो वे थोड़ेसे लोग ही सत्यधर्म

को पासकेंगे न बाकी जनता पासकेगी। जब पानेयोग्य वस्तु ही न रह जायगी तब उसका पाना क्या और न पाना क्या?

बिंबसार-- भगवन्, जनता को इन चमत्कारों के मोह से हटाने के लिये तो कोई चमत्कार होना चाहिये। कम से कम आप जनता को चमत्कारों की निःसारता तो समझाइये जिससे लोग ढोंगियों के जाल में न फँसें।

मैं-- हां, इसके लिये तुम लोगों को एकत्र करो। घोषणा करादो कि मैं यमक प्रातिहार्य बतलाऊंगा।

जब सब लोग इकट्ठे हुए तब मैंने उनसे पूछा-- तुम लोगों ने क्या कभी दूसरे प्रातिहार्य चमत्कार देखे हैं।

एक ने कहा-- भगवन्, एक बार एक अर्हत् यहाँ आये थे वे एक ऐसा दीपक जलाते थे जिसके बीच में से जलधारा प्रगट होती थी। इस प्रकार आग और पानी का मेल देखकर हम लोग चकित हो गये।

मैं-- और तुम लोग इसीलिये उन्हें अर्हत् मानते थे?

वह-- जी हाँ।

मैं-- पर बादलों में जो बिजली चमकती है वह तो दीपक में से निकलती हुई जलधारा से भी बढ़कर चमत्कार है।

वह-- पर वह तो ईश्वरीय चमत्कार है, जो आदमी ईश्वरीय चमत्कार को अपने हाथों से करके दिखा सकता है वह कोई सिद्ध पुरुष तो होना ही चाहिये।

मैं-- तुम्हारी पत्नी कभी गरम पानी कर सकती है या नहीं?

वह– कर सकती है।

मैं– वह पानी तुम्हारे हाथ पर डाला जाय तो तुम्हारा हाथ जलेगा या नहीं ?

वह– जलेगा।

मैं– वही गरम पानी अगर आग पर डाला जाय तो आग बुझेगी या नहीं ?

वह– बुझेगी।

मैं—देखो, यह कितना बड़ा चमत्कार है एक ही चीज़ जलाती भी है और बुझाती भी है। और यह चमत्कार तुम्हारी पत्नी पैदा कर सकती है इसलिये तुम अपनी पत्नी को अर्हत् मानते हो कि नहीं ?

सब हँसने लगे।

मैं—क्यों, हँसते क्यों हो ? तुम्हारी पत्नी भी तो ईश्वरीय चमत्कार को अपने हाथ से कर दिखलाती है तब तुम्हारे नियम के अनुसार वह अर्हत क्यों नहीं ?

वह—इस तरह पानी गरम करने से क्या कोई अर्हत् होता है ? यह तो साधारण बात है।

मैं— तब दीपक में से जलधारा निकालनेवाला अर्हत कैसे हो जायगा ? तुमने फव्वारा निकलना तो देखा है। अगर फव्वारे के समान छोटीसी नलीके चारों तरफ़ बत्ती लगाई जाय और खूब तेल भर दिया जाय तो दीपक जलेगा और दीपक के बीच में जो नली है उसमें से पानी भी आता रहेगा, इसमें आश्चर्य क्या है ?

वह—भगवन्, हम लोग नहीं समझते इसलिये हमें आश्चर्य होता है।

मैं– यह ठीक है कि तुम दुनिया भर की बातें नहीं समझ सकते पर इतना तो समझ सकते हो कि इस जगतमें एक से एक बढ़कर आश्चर्य भरे हुए हैं। कोई काम प्रकृति के नियम को तोड़कर नहीं हो सकता, किसी नियम को समझ कर अगर कोई चमत्कार दिखाये तो इस से वह चतुर खिलाड़ी कहा जायगा अर्हत् नहीं ! भौतिक बातों के खेल दिखाने से कोई अर्हत नहीं हो जाता। अर्हत् के चमत्कार आध्यात्मिक होते हैं।

वह– आध्यात्मिक चमत्कार कैसे ?

मैं– जैसे तुम आग और पानी को एक साथ रखने को चमत्कार कहते हो उसी प्रकार जो शत्रु और मित्र दोनों को एक साथ रख सकता है - समभाव रख सकता है वह भी चमत्कार है। कोई अगर तुम्हारी भलाई करे और कोई तुम्हारी बुराई करे तो क्या तुम उन दोनों पर समभाव रख सकोगे ?

वह– नहीं।

मैं-- जिस आदमी ने दीपक में से जलधारा दिखलाई थी वह ऐसा समभाव रख सकता था ?

वह-- नहीं। बल्कि एक आदमी ने सिर्फ़ इतना कहा था कि तुमने भीतर जल संग्रह कर रक्खा है जिसमें से यह पानी आता है तो वह उसपर खूब क्रुद्ध हुआ था और उसे अविश्वासी नास्तिक कहकर निकलवा दिया था। वह सम-भावी बिलकुल न था।

मैं— बस, तो अब तुम समझ गये कि आग पानी को एक जगह दिखलाना सरल है पर शत्रु-मित्र को दिल में एक समान बिठलाना अर्थात् उनके साथ निष्पक्ष व्यवहार करना कठिन है। शत्रु मित्र पर एक सरीखा भाव रखना ही यमक प्रतिहार्य है। जो यह यमक प्रतिहार्य दिखा सकता है वही अर्हत् है! तुम लोगों को चाहिये कि तम इन्द्रजालियों के पुजारी न बनो पर जो लोग सबके साथ समभाव रखते हैं, शत्रु-मित्र ऊंच-नीच, धनी-गरीब आदि सबकी भलाई चाहते हैं वे ही सच्चे अर्हत् है! उन्हीं की तम्हें पूजा करना चाहिये!

(१६)

ऐसा मालुम होता है कि दुनिया में दण्ड की आवश्यकता सदा रहेगी! इस संघ में आकर मेरे निरन्तर उपदेश पाकर भी बहुत से भिक्षु ऐसे लड़ाकू और घोर अहंकारी हैं कि वे विनय अविनय को भूलकर मेरे सामने भी मुँह बजाने लगते हैं। कुछ भिक्षु ऐसे हैं कि अगर उन्हे किसी बुराई से रोकने जाओ तो वे बुराई का ही समर्थन करने लगेंगे भले ही टोकने के पहिले वे उस बुराई को बुराई समझते रहे हों। 'बस, बस समझ गया, समझ गया' कहकर उस बात को टाल देंगे यद्यपि वे समझेंगे खाक नहीं। फिर भूल होने पर कह बैठेंगे हमें क्या मालूम था? समझाने जाओ तो पूरी बात सुने बिना 'समझ गये, समझ गये' कहकर भागना चाहते हैं, समझाये जाने में अपमान का अनुभव करते हैं, जो मुँह पर आता है बोल बैठते हैं, समझाना बन्द कर दो तो मन-चाही भूल करके कहते हैं, हमें क्या मालूम?

कभी शब्दों से विनय प्रगट करते हैं पर स्वर से महान् अविनय प्रगट करते हैं, मुँह बिगाड़ते हैं कभी दिल नहीं खोलते। जो किसी के सामने अपना दिल नहीं खोल सकता वह किसी से अपना सुधार कराना चाहे तो यह असम्भव है। न उसका मन पवित्र हो सकता है न वह निर्भय बन सकता है न विश्वसनीय हो सकता है। ऐसे लोग कितने भी वाचाल हो जायें पर अन्त में समाज से दुतकारे जाते हैं।

आज वे कौशाम्बी के लड़ाकू भिक्षु आये उस दिन मैंने कितना समझाया पर न माने और एक छोटीसी बात को लेकर संघ के गौरव को धक्का लगाया।

एक भिक्षु शौच के लिये गया तो पात्र में पानी छोड़ आया। दूसरे भिक्षु ने कहा कि इस प्रकार पानी छोड़ना न चाहिये। सीधीसी बात थी व्यवहार की इस गल्ती को स्वीकार करलेना चाहिये था पर किसी की सीधी सूचना को स्वीकार करले तो भिक्षु कैसे ? बस उसने इसीपर वाद छेड़ दिया। जगत तो क्षणिक है इस में पवित्र क्या और अपवित्र क्या इसीपर व्याख्यान चलने लगा। ये अतिवादी मूर्ख नहीं समझते कि जीवन में बुद्धि और भावुकता का समन्वय करना पड़ता है, इस नासमझी का परिणाम यह हुआ कि इन भिक्षुओं में दलबन्दी हो गई और दोनों दल आपस में खूब लड़ने लगे। मेरे पास समाचार आया तो मैं समझाने गया। पर वे बोले— आप धर्मस्वामी हैं तो आराम से रहें हमारे बीच में न पड़ें हम स्वयं निपट लेंगे।

उन की यह उद्दंडता देखकर मुझे आश्चर्य तो हुआ पर जगत् का स्वरूप विचार करके मैंने मनको सांत्वना दी।

उन को समझाना वृथा था। बहुत से प्राणी ऐसे होते हैं कि वे ठोकर खाकर ही ठिकाने आते हैं इसके पहिले उन्हें समझाओ तो वे नहीं समझते। समझने की पात्रता जब तक न आजाये तब तक समझाना वृथा है इतना ही नहीं बल्कि ऐसे लोगों को समझाने से उन की जड़ता बढ़ती है अथवा वे वक्रजड़ हो जाते हैं। इसीलिये मैंने उन्हें न समझाया। इतना ही नहीं मैं उन्हें लड़ते झगड़ते छोड़कर कौशाम्बी से चला आया।

मेरे चले आने पर कौशाम्बी के उपासकों को बहुत बुरा लगा। उनने भिक्षुओं के पास आना जाना बन्द कर दिया, मिलना जुलना बन्द कर दिया, भिक्षा देना भी बन्द कर दिया, तब इन की अक्ल ठिकाने आई। और अब अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये ये कौशाम्बी से श्रावस्ती तक मेरे पास दौड़े आरहे हैं।

मैं सोचता हूँ जब इन गृहत्यागी भिक्षुओं को भी नीतिपर चलाने के लिये इतनी कड़ाई की आवश्यकता है तब साधारण जनता का तो कहना ही क्या है इससे कहना पड़ता है कि उपदेश और दंड दोनों की आवश्यकता है।

पर दंड पशुताकी निशानी है। मनुष्य और पशु में मुख्य अन्तर है तो यही है कि मनुष्य बुराई को स्वयं समझता है या संकेतमात्र में समझता है और दूर करता है जब कि पशु

समझता तो है नहीं, विवश हो कर दूर रहता है या उसे रहना पड़ता है। कौशाम्बी के भिक्षुओं का पश्चात्ताप ऐसा ही है।

अब वे बहुत पश्चात्ताप करके भी उसके वास्तविक फल से वञ्चित रहेंगे, पहिले वे थोड़े पश्चात्ताप से भी इससे असंख्यगुणा फल पासकते थे, मेरा स्नेह और जनता की भक्ति सम्पादन कर सकते थे।

इसमें सन्देह नहीं-मन का असंयम परलोक में ही नहीं इसी लोक में भी फल देता है।

इस घटना से एक बात यह भी मालूम होती है कि उपासक वर्ग अगर विवेकी हो तो भिक्षु संघ में विकार आना कठिन हो जाता है। मेरा भिक्षु संघ तब तक सच्चा भिक्षुसंघ रहेगा जब तक उपासक वर्ग कौशाम्बी के उपासक वर्ग की तरह विवेकी रहेगा।

(१७)

आज कुछ दम्पति मेरे पास आये और प्रणाम करके उनने कुछ चर्चा करनी चाही। तब मैंने पूछा—आप लोग किस जाति के दम्पति हैं ?

उनमें से कोई बोले— हम ब्राह्मण हैं, कोई बोले— हम क्षत्रिय हैं, कोई बोले— हम वैश्य हैं, कोई बोले— हम शूद्र हैं।

मैंने कहा— ये मनुष्य के भेद नहीं हैं, ये जीविका के भेद हैं। इनसे किसी का अच्छापन बुरापन या पात्रता अपात्रता का पता नहीं लगता। दम्पति के विषय में यह देखना चाहिये कि शव-

दम्पति कौन है ? शवपतिक दम्पति कौन है ? शवपत्नीक दम्पति कौन है ? और जीवित दम्पति कौन है ?

उनने कहा— इन भेदों का क्या अर्थ है भन्ते !

मैं—देखो, जहाँ पति-पत्नी दोनों दुराचारी संयमहीन, कलहप्रिय और आलसी हैं वह शव-दम्पति है, जिसमें पति तो दुराचारी आदि है और पत्नी सदाचारिणी शांत कर्मठ है वह शव-पतिक दम्पति है क्योंकि इसमें पति शव रूप अर्थात् मुर्दा है पत्नी जीवित है, जिसमें पत्नी दुराचारिणी आदि है और पति सदाचारी होता है वह शवपत्नीक दम्पति है, जिसमें दोनों सदाचारी कर्मठ आदि हैं वह जीवित दम्पति या दिव्य दम्पति है।

वे बोले- भन्ते, तब तो हम लोग शवदम्पति हैं, आशीर्वाद दीजिए कि हम सब जीवित दम्पति बनें।

आशीर्वाद तो मैंने दे दिया, पर क्या आशीर्वाद से ही मुर्दे ज़िन्दे बन सकते हैं ? जीवन तो स्वहित परहित के समन्वय से बनता है।

(१८)

[१] जिस ब्राह्मण ने इस नगर में आने के लिये निमन्त्रण दिया था उसका अब मुँह भी नहीं दिखाई देता। भोजन के अभाव में भिक्षु-संघ की काफ़ी दुर्दशा हुई है। इस नगर में भिक्षुओं को कोई भिक्षा तक नहीं देता। भिक्षु घुड़सार में जाकर घोड़ों का दाना लाते हैं और ऊखल में कूट कूट कर खाते हैं, मेरे लिए भी आनन्द थोड़े से दाने कूट देता है। मैं तो संतुष्ट हूँ पर ये भिक्षु भी असन्तुष्ट नहीं हैं।

यह विपत्ति किसी भी कारण आई हो पर इसका फल अच्छा है, भिक्षुओं की अच्छी परीक्षा हो रही है। ऐसे अवसर पर जो भिक्षु संघ में टिकेंगे वे ही कुछ अपनी और दुनिया की भलाई कर जायँगे। विपत्ति ही तो मनुष्य की सच्चाई की कसौटी है। पीछे तो एक दिन ऐसा आयगा जब इन भिक्षुओं को राजाओं से भी बढ़ कर भोजन मिलेगा, पर उस समय तो ये मोघ पुरुष (हरामखोर) हो जायेंगे। आज जो भिक्षु अनाज कूट कूट कर खा रहे हैं, वे ही संघ की जड़ को गहराई तक पहुँचा रहे हैं, वे अमर होंगे और उनसे संघ अमर होगा।

प्रसन्नता की बात यह है कि इस विपत्ति से भिक्षु दुःखी नहीं हैं, अगर दुःख से दुःखी हो जाय तो वह भिक्षु कैसा? सेवक कैसा? इस कसौटी में से हर एक सेवक को पार होना ही पड़ता है। जगत् सचाई को जल्दी नहीं पहिचानता, जीवन में अगर वह किसी को पहिचान ले तो समझो जल्दी पहिचान लिया, नहीं तो साधारणत वह मरने के बाद ही सच्चे सेवक को अच्छी तरह पहिचान पाता है। दुनिया का एक बँधा हुआ माप होता है पर क्रांतिकारी उस माप को ही बदलना चाहता है। पहिले पहिले दुनिया उसे अनुत्तीर्ण समझती है बाद में जब वह क्रांतिकारी के माप को मान लेती है तब उसे स्वीकार करती है तब वह क्रान्तिकारी सेवक जीवित हो या मर चुका हो दुनिया उसे पूजती है। मेरे संघ की भी यही हालत होगी, अभी वह दुनिया के माप में अनुत्तीर्ण हो रहा है। जो इस समय टिके हुए हैं जिन्हें सहन करने का मज़ा आ रहा है, उन्हीं की कमाई पर आगे की दुनिया अमरफल चखेगी।

२–कल की चिन्ता आज शान्त हो गई। वह वैरंजक ब्राह्मण आज आया और आते ही उसने शिकायत की कि इस नगर के जो वृद्ध ब्राह्मण–अच्छे अच्छे विद्वान–आपके पास आते हैं उन्हें आप नमस्कार क्यों नहीं करते ? उनके लिये उठ कर खड़े क्यों नहीं होते ?

उसकी शिकायत सुनकर मैं समझा कि शायद इसीलिये वेरंजा में मेरे संघ के विरोध का आन्दोलन किया गया है और इसी से संघ को भिक्षा नहीं मिलती है। ब्राह्मणों की महत्ता को धक्का लगा है और उन्हीं ने जनता को मेरे संघ पर उपेक्षा करने के लिये तैयार किया है।

खैर, मनकी इस बात को दबाकर मैंने उस ब्राह्मण से पूछा–तुम मुझ से अभिवादन करने के लिये क्यों कहते हो ?

क्योंकि ब्राह्मण आपसे ज्येष्ठ हैं।

किस बात में ज्येष्ठ हैं ?

और किसी बात में ज्येष्ठ हों या न हों पर उम्र में तो ज्येष्ठ हैं।

देखो, एक मुर्गी के बहुत से अंडे हैं जो अच्छी तरह सेवित हैं, उनमें से एक अंडा फूटा और उसका बच्चा बाहर निकल आया तो वह बच्चा बाकी अंडों की अपेक्षा ज्येष्ठ होगा या कनिष्ठ ?

ज्येष्ठ होगा।

तो बस, जो लोग अविद्या के बन्धन में बँधे हैं उनकी अपेक्षा वह ज्येष्ठ है जो अविद्या के अंडे को फोड़कर बाहर निकल आया है। ब्राह्मण, अब तुम समझे कि मैं उन्हें क्यों अभिवादन नहीं करता हूँ !

समझ गया भंते। अब मुझे क्षमा करें, और संघ सहित आपका मेरे यहां निमन्त्रण है सो आप स्वीकार करें।

मैंने निमन्त्रण स्वीकार किया और ब्राह्मण चला गया। जगत् में आज कहीं धनकी पूजा है कहीं जाति की पूजा है कहीं अधिकार और पशुबल की पूजा है पर सत्य और संयम की पूजा नहीं है। दुनिया अभिमान-वश अज्ञान-वश सत्य और संयम को जाति के आगे या धन या अधिकार के आगे झुकाना चाहती है पर मै ऐसा नहीं करने देना चाहता हूँ, इसे दुनिया मेरा अहंकार समझती है दुनिया के इस भोलपन पर मुझे दया आती है।

[ १९ ]

आज श्रावस्ती में आये हुए पाँच सौ ब्राह्मणों ने अश्वलायन को अपना प्रतिनिधि बनाकर वाद-विवाद के लिये भेजा। मैं चारों वर्णों की शुद्धि करता हूँ—इसी पर उन्हें आपत्ति थी। अश्वलायन ने आकर मुझ से कहा—

ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, वे ब्रह्मा के औरस पुत्र हैं, वे अन्य वर्णों से अलग हैं, उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

मैंने कहा—ब्राह्मणों की स्त्रियाँ भी अन्य स्त्रियों की तरह ऋतुमती होतीं हैं उसी तरह सन्तान प्रसव करती हैं फिर ब्राह्मणों में क्या विशेषता है?

यह ठीक है, फिर भी ब्राह्मण जैसे स्वर्ग के अधिकारी हैं वैसे दूसरे नहीं।

तो क्या अश्वलायन, तुम यह समझते हो कि चोरी, झूठ,

व्यभिचार हत्या आदि से जिस प्रकार दूसरे वर्ण के लोग नरक जाते हैं उस प्रकार ब्राह्मण न जायेंगे ?

नहीं, ऐसी बात तो नहीं है गौतम, पापी ब्राह्मण भी उसी तरह नरक जायँगे । इस दृष्टि से ब्राह्मण में विशेषता नहीं है पर इतनी बात अधिक है कि वह धर्मात्मा अधिक होता है ।

अच्छा तो अश्वलायन, क्या तुम यह समझते हो कि हत्या, झूठ, चोरी, व्यभिचार आदि का त्याग ब्राह्मण ही करता है दूसरा नहीं ?

यह बात भी नहीं है गौतम, त्याग तो सभी करते हैं फिर भी ब्राह्मण-सन्तान में जो वंश परम्परा से विशेषता है वह दूसरे में नहीं है ।

अच्छा, जैसे घोड़ी और गदहे के सम्बन्ध से खच्चर पैदा होता है उसी प्रकार ब्राह्मणी तथा ब्राह्मणेतर के सम्बन्ध से कोई अलग जाति का प्राणी पैदा होगा ?

यह बात भी नहीं है गौतम, ऐसा कोई अन्तर न होगा पर संस्कार-विधि का अन्तर तो रहता है ।

अच्छा, एक ब्राह्मण ऐसा है जिसकी उपनयन आदि संस्कार-विधि हुई है पर वह दुराचारी है पापी है और एक आदमी का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है पर वह सदाचारी और पुण्यात्मा है तब तुम किसे महत्व दोगे, ब्राह्मण !

सो तो सदाचारी पुण्यात्मा को ही महत्व देना होगा ।

अब सोचो मेरी चतुर्वर्णी शुद्धि में और तुम्हारे कहने में क्या अन्तर रहा । आचार से ही मनुष्य की शुद्धि—अशुद्धि का पता लगता है अन्यथा कोई देखने जाता है कि मेरी माता का सम्बन्ध

किससे हुआ या मातामही आदि सात पीढ़ियों में कभी किसी का सम्बन्ध दूसरे से नहीं हुआ ?

नहीं भन्ते, कोई नहीं जानता।

तब फिर वंशपरम्परा का अभिमान क्यों ? तब तो सभी की शुद्धि करना चाहिये, जो शुद्ध हो जाय वही अच्छा।

मानता हूँ भन्ते, अब आप मुझे अपना उपासक समझें।

अश्वलायन चला गया, इसमें संदेह नहीं—अश्वलायन में शुद्ध जिज्ञासा थी इसलिए वह सत्य को समझ सका।

[ २० ]

आज मैं राजगृह में भिक्षा के लिये गया तो मैंने देखा कि एक गृहस्थ गीले कपड़े पहिले हुए पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊपर नीचे सब दिशाओं को नमस्कार कर रहा था। बेचारा खुद भी नहीं समझता था कि दिशा पूजन क्यों किया जाता है, बापदादों की रीति मानकर पूजन कर रहा था। इस प्रकार के अर्थशून्य क्रियाकांड मनुष्य की शक्ति व्यर्थ नष्ट करते हैं बल्कि इनसे धर्म के विषय में वृथा संतोष होता है। धर्म तो कुछ होता नहीं है और लोग समझ लेते हैं कि हमने धर्म किया। इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि लोग यह सब कुछ न करें, कम से कम उन्हें इतना भान तो होता रहेगा कि हम धर्म नहीं कर पाते। धर्म के नामपर व्यर्थ के क्रियाकांड से लाभ तो कुछ होता नहीं, साथ ही उसके भरोसे पाप को उत्तेजन मिलने लगता है। लेकिन अगर लोगों से यह कहा जाय कि इसमें कुछ लाभ नहीं है इसलिये तुम छोड़ दो तो वह

अच्छी से अच्छी और सीधी से सीधी बात भी न समझेंगे, समझकर भी पसन्द न करेंगे इसलिये मैंने उसे समझाने के लिये दूसरा ढंग निकाला।

मैंने उससे कहा— तुम छः दिशाओं की पूजा किसलिये करते हो ?

उसने कहा--मैं यह तो नहीं जानता, भन्ते !

बिना जाने पूजा से क्या फ़ायदा होगा ?

भन्ते, आपही बतलाये कि दिशाओं की पूजा क्यों करना चाहिये ?

देखो, पहिले दिशाओं का अर्थ समझलो; जिन दिशाओं का तुम पूजन कर रहे हो वे वास्तव में दिशाएँ नहीं हैं, पूजा करने की दिशाएं दूसरी होती हैं।

सो कौनसी, भन्ते ?

गृहपति, मातापिता पूर्वदिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा है, स्त्रीपुत्र पश्चिम दिशा हैं, मित्र वगैरह उत्तर दिशा हैं, नौकर चाकर नीची दिशा हैं, श्रमण ब्राह्मण ऊंची दिशा हैं, इन छः दिशाओं की पूजा करना चाहिये।

वह बोला— भन्ते, माता-पिता की पूजा तो ठीक है पर सेवकों की पूजा कैसे करूँ ! सेवक तो मेरी ही पूजा करते हैं !

मैंने कहा— पूजा का अर्थ सिर्फ़ हाथ जोड़ना नहीं है किन्तु योग्य विनय प्रेम आदि के साथ उनका पालन पोषण रक्षण आदि है। नौकरों से तुम पूजा लेते हो सो लो, पर उसका ठीक ठीक बदला दो, उनके साथ वात्सल्य रखो—यही उनकी पूजा है।

इस प्रकार इन छः दिशाओं की पूजा करने से धर्म का पालन होता है।

उस गृहपति को मेरी बात बहुत पसन्द आई और उसने यह दिशा-पूजन छोड दिया, मेरे बताए हुए दिशा-पूजन को स्वीकार किया।

[ २१ ]

आज मैं पिंडचार के लिये जब बस्ती में गया तब भिक्षा का समय न आया था इसलिये मैं उदायी परिव्राजक के यहां चला गया। वह बैठे बैठे कुछ गप्पें लड़ा रहा था। मेरे पहुँचते ही उसने 'भन्ते' कह कर स्वागत किया। मैंने पूछा--क्या बातें हो रहीं हैं, उदायी ?

उदायी बोला-यही चर्चा चल रही थी कि किसके शिष्य अपने गुरु का अधिक सन्मान करते हैं ? उसमें आपका भी नाम आया था। मेरा कहना था कि आपके शिष्य आपका बहुत सन्मान करते हैं।

यह कैसे जाना तुमने ?

भन्ते, एक दिन आप उपदेश दे रहे थे कि शिष्य को खाँसी आई, तब दूसरे शिष्य ने कहा भाई, खाँसो मत, चुपचाप सुनने दो, शास्ता उपदेश दे रहे हैं। इस प्रकार जब आप बोलते हैं तब कोई शिष्य इधर उधर देखता भी नहीं है बिलकुल निःशब्द होकर एकाग्रचित्त से आपकी बात सुनता है। यहां तक देखा गया है कि कोई शिष्य संघ छोड़कर गृहस्थ भी हो जाता है तो आपकी

तारीफ़ करता रहता है, संघ में न रह सकने के कारण अपनी निन्दा करता है। इससे मैं समझता हूं कि आपके शिष्य आपका बहुत गौरव करते हैं। इसीसे आपके शिष्य आपके पास से बहुत कुछ सीखकर विद्वान विवेकी और संयमी बन सके हैं। आपका आदर करके उनने बहुत लाभ उठाया है।

मैंने पूछा--उदायी, इस पूज्यता का कारण तुम क्या समझते हो?

उदायी बोला--इसके मैं पाँच कारण समझता हूं। पहिली बात तो यह कि आप बहुत थोड़ा खाते हैं, दूसरी बात यह कि आप सादा कपड़ा पहिनते हैं, तीसरी बात यह कि आप सादा भोजन करते हैं, चौथी बात यह कि आप मामूली आसन पर सो जाते हैं, पाँचवीं बात यह कि आप एकान्त में रहते हैं।

मैंने कहा--उदायी, इन गुणों से कोई आदमी महान नहीं बनता, दंभी लोग इन बातों में खूब बढ़ सकते हैं। मेरे बहुत से शिष्य मेरी अपेक्षा अधिक अल्पाहारी हैं। मेरी अपेक्षा ख़राब कपड़ा पहिनते हैं ख़राब और रूखा भोजन करते हैं वस्त्र पहिनते हैं, झाड़ के नीचे ज़मीन पर सो जाते हैं, गुफाओं में अकेले पड़े रहते हैं वे सिर्फ़ आलोचना के लिये संघ में आते हैं। इन सब बातों में मेरे शिष्य मुझ से बहुत बढ़ जाते हैं इसलिये इन बातों के कारण वे मुझे क्यों पूजेंगे। इन बातों से कोई मनुष्य पूज्य आदरणीय नहीं होता। दुनिया ऐसी ही बातों से लोगों को पूज्य मान लेती है इसलिये जगत् में दंभियों की संख्या बढ़ती हैं और सच्चे साधु सच्चे सेवक--दुर्लभ हो जाते हैं। लोगों में यह अविवेक जितना कम होगा जगत में सच्चे साधु उतने अधिक होंगे।

उदायी—भन्ते, अगर इन बातों से मनुष्य पूज्य नहीं बनता और आप भी पूज्य नहीं हैं तो वे कौन से कारण हैं जिनसे आप पूज्य हैं।

मैने कहा—उदायी, वे कारण दूसरे ही हैं जिससे मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। पहिला कारण तो यह है कि मैं शीलवान अर्थात् संयमी हूँ, अपनी मनोवृत्तियों पर अंकुश रखता हू, विश्वहित के अनुकूल काम करता हूं, विश्वहित का नाश नहीं करता हूँ। दूसरी बात यह है कि जो कुछ मैं कहता हूं अनुभव से कहता हूं, इधर उधर से सुनकर बिना अनुभव किये कोई बात नहीं कहता। तीसरी बात यह है कि हर एक बात के परिणाम और भविष्य का खयाल रखता हूं इसलिये मेरी बात का खण्डन नहीं हो पाता है। चौथी बात यह है कि मैंने शिष्यों के ऊपर व्यर्थ ज्ञान का बोझ नहीं लादा है मैंने दुःख का स्वरूप, उसका कारण, दुःख का नाश और दुःख के नाश का रास्ता बताकर आदर्श और सुखमय जीवन बनाने का मार्ग बताया है। पाँचवीं यह कि मैंने उनके सामने ऐसा कार्यक्रम रक्खा है कि वे बड़ी सरलता से मार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं, कोई अर्हत् हो जाते हैं, कोई अच्छे साधक बन जाते हैं। ये पांच कारण हैं उदायी, जिससे मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। खाने पीने की बातों से नहीं। संयमी आदमी को खाने पीने की पर्वाह नहीं होती, न वह विलासी बनता है, न उनसे डरकर दूर भागता है। वह समभावी रहकर अच्छा बुरा जो मिलता है उसमें सन्तुष्ट रहता है। उसे प्रदर्शन की पर्वाह नहीं होती। इसीलिये मुझे प्रदर्शन की पर्वाह नहीं है। इन सब

बातों से मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। उदायी ने मेरी बातों का समर्थन किया।

[ २२ ]

विवेक हीन आदमी के हाथ में कोई भी धर्म सुरक्षित नहीं है। वह अच्छी से अच्छी बात का ऐसा दुरुपयोग कर सकता है कि प्रलय मच जाय, जीवन की जगह मौत का नाच होने लगे।

उस दिन मैंने इन्द्रियों और शरीर की गुलामी से छूटने के लिये अशुभ भावना का उपदेश दिया था और इसलिये शरीर को घृणित बतलाया था कि लोग शारीरिक विषय भोगों में फँसकर कर्तव्य न भूल जायँ। शरीर की निःसारता व घृणितता का उपदेश भी इसीलिए दिया था।

उपदेश देकर मैं पन्द्रह दिन के एकान्तवास को चला गया। वहां से जब लौटा तब मालूम हुआ कि भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है और जब उसके कारण का पता लगाया तब तो मैं काँप उठा।

भिक्षुओं ने शरीर को घृणित समझ कर शरीर को नष्ट करना शुरु कर दिया था। बहुतों ने आत्महत्या करली थी, जो आत्महत्या नहीं कर सके उनने दूसरे भिक्षुओं से मौत माँगी और उनके हाथ से अपना बध कराया था। एक भिक्षुने तो धर्म समझ कर भिक्षुहत्या को ही अपना कर्तव्य बना लिया। तलवार लेकर वह भिक्षुओं के पास जाता था और कहता था बोलो—किसे मारूँ? जो तरना चाहता था उसी का वह सिर उड़ा देता था। इस प्रकार पन्द्रह दिन में उसने कई सौ भिक्षु मार डाले। धर्म

पत्नी थीं। कन्या-जन्म की बात सुनते ही प्रसेनजित का मुंह फीका पड़ गया, लज्जा के मारे उसकी नज़र नीची हो गई, उसको खिन्न देखकर मैंने कहा, राजन्, कन्याजन्म से इतने खिन्न क्यों होते हो, जैसे कोई पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार कोई स्त्री भी पुरुषों से श्रेष्ठ होती है, आवश्यकता दोनों की है। अगर सभी के घरों में पुत्रों का ही जन्म होने लगे, जैसा कि लोग चाहते हैं, तो एक दो पीढ़ी में दुनिया में एक भी मनुष्य न रह जाय। मनुष्य जाति की रक्षा के लिये पुत्रजन्म जितना आवश्यक है पुत्रीजन्म उससे कम आवश्यक नहीं है बल्कि अधिक ही है। पुत्री का पालन करना पुत्र के पालन करने की अपेक्षा जगत की बड़ी सेवा है। इस सेवा का अवसर मिलने से तुम्हें अप्रसन्न, खिन्न या लज्जित नहीं होना चाहिये।

( २६ )

आज राजा उदयन के पुत्र बोधि राजकुमारने अपने नये प्रासाद में मुझे निमन्त्रित किया। भोजन के बाद उसने पूछा-भन्ते, सुख सुख से नहीं मिल सकता, सुख दुख से मिलता है।

मैंने कहा—राजकुमार, पहिले मुझे भी ऐसा मालूम होता था इसलिये मैंने सुन्दर पत्नी राजवैभव आदि का त्याग किया था। आलारकालाम के पास जाकर मैंने साधना की फिर उद्दक राजपुत्र के पास गया, वहां भी मैंने साधना की, वहां मुझे सुख न मिला, तब मैंने और भी कष्ट उठाने की ठानी, मैं गर्मी सर्दी में श्वास रोककर अनेक कष्ट सहने लगा, निराहार रहने लगा, कभी कभी सिर्फ दाल का पानी लेने लगा, इससे मैं कमज़ोर हो गया उठते ही गिर पड़ता

मेरे संघ में हजारों साधु हैं पर उनके सैंकड़ों जगत हैं, अपने जगत के बाहर किसी को किसी से मतलब नहीं, यह कैसी तुच्छता या क्षुद्रता है। ये लोग अगर ऐसे ही संकुचित बने रहे तो दुनिया के क्या काम आयेंगे इनकी साधुता बड़ी से बड़ी असाधुता बनकर दुनिया के लिये बोझ होजाएगी।

आज मैं आनन्द के साथ विहार में घूम रहा था, घूमते २ मैं एक ऐसी जगह पहुँचा जहां एक भिक्षुक कूलता कराहता हुआ पड़ा था उसे पेट की बीमारी थी और कोई भी भिक्षुक उसकी परिचर्या के लिये नहीं था। उसका शरीर गन्दा हो गया था उसकी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और भिक्षुओं की स्वार्थ वृत्ति पर रोष भी आया। मैंने आनन्द के हाथ से पानी मँगवाया उसे स्नान कराया, साफ कपड़े पहनाये और चारपाई पर बिठा दिया। इसके बाद मैंने भिक्षुओं को जोड़ा और समझाया " भिक्षुओ, तुम्हारे माता नहीं, पिता नहीं, और कोई भाई बन्धु नहीं, तुम अगर एक दूसरे की सेवा न करोगे तो कौन करेगा। जरा सोचो तो, तुम लोग दुनियाँ की सेवा के लिये घर से निकले थे अगर तुम भिक्षुओं की ही सेवा नहीं कर पाते तो फिर किसकी सेवा करोगे। याद रखो, ऐसे स्वार्थी बनकर तुम श्रमण या साधु नहीं कहला सकते।

( २५ )

आज मेरे पास कोशलराज प्रसेनजित बैठे हुये थे। उपदेशके बाद उनका एक नौकर आया और उसने कहा कि " मल्लिकादेवी को कन्या हुई है "। मल्लिकादेवी प्रसेनजित की

के नाम पर इन मूढ़ अविवेकियों ने जितना पाप कमाया उतना बड़ा से बड़ा पापी न कमा पाता।

( २३ )

अहंकार के कारण मनुष्य अपना कितना नाश कर लेत है इसका कुछ ठिकाना नहीं। अहंकार वश लड़ते समय वह यह भी भूलजाता है कि मैं कौड़ी के लिये मुहर गमा रहा हूं।

आज शाक्य और कोलिय आपस में लड़ रहे थे। नदी के बांध के पानी का झगड़ा था। दोनों अपने अपने खेतों में पानी लेना चाहते थे और इसी बात पर एक दूसरे का खून बहा रहे थे मानों खून की कीमत पानी से कम हो।

मैंने जाकर कहा कि कोई आदमी एक घड़ा पानी लाकर तुम से खून माँगे तो तुम कितना खून दोगे।

दोनों ने कहा—पानी के बदले तो कोई खून का एक भी बूंद न देगा।

मैंने कहा—तब तुम लोग पानी के लिये सैकड़ों आदमियों का खून क्यों बहा रहे हो!

दोनों दल लज्जित हुए और लड़ाई बन्द हुई।

( २४ )

विश्वसेवा का दावा करना सरल है पर विश्वसेवा करना कठिन है, भिक्षु कुटुम्ब छोड़कर जगत् की सेवा करने के लिये आते हैं पर संघ में एक छोटा सा संसार बनाकर बैठ जाते हैं और उसके बाहर कोई मरता है या जीता है इसकी पर्वाह नहीं करते। आज

मेरे संघ में हज़ारों साधु हैं पर उनके सैंकड़ों जगत हैं, अपने जगत के बाहर किसी को किसी से मतलब नहीं, यह कैसी तुच्छता या क्षुद्रता है। ये लोग अगर ऐसे ही संकुचित बने रहे तो दुनिया के क्या काम आयेंगे इनकी साधुता बड़ी से बड़ी असाधुता बनकर दुनिया के लिये बोझ होजाएगी।

आज मैं आनन्द के साथ विहार में घूम रहा था, घूमते २ मैं एक ऐसी जगह पहुँचा जहां एक भिक्षुक कूलता कराहता हुआ पड़ा था उसे पेट की बीमारी थी और कोई भी भिक्षुक उसकी परिचर्या के लिये नहीं था। उसका शरीर गन्दा हो गया था उसकी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और भिक्षुओं की स्वार्थ वृत्ति पर रोष भी आया। मैंने आनन्द के हाथ से पानी मँगवाया उसे स्नान कराया, साफ कपड़े पहनाये और चारपाई पर बिठा दिया। इसके बाद मैंने भिक्षुओं को जोड़ा और समझाया "भिक्षुओ, तुम्हारे माता नहीं, पिता नहीं, और कोई भाई बन्धु नहीं, तुम अगर एक दूसरे की सेवा न करोगे तो कौन करेगा। जरा सोचो तो, तुम लोग दुनियाँ की सेवा के लिये घर से निकले थे अगर तुम भिक्षुओं की ही सेवा नहीं कर पाते तो फिर किसकी सेवा करोगे। याद रखो, ऐसे स्वार्थी बनकर तुम श्रमण या साधु नहीं कहला सकते।

( २५ )

आज मेरे पास कोशलराज प्रसेनजित बैठे हुये थे। उपदेशके बाद उनका एक नौकर आया और उसने कहा कि "मल्लिकादेवी को कन्या हुई है"। मल्लिकादेवी प्रसेनजित की

के नाम पर इन मूढ़ अविवेकियों ने जितना पाप कमाया उतना बड़ा से बड़ा पापी न कमा पाता।

( २३ )

अहंकार के कारण मनुष्य अपना कितना नाश कर लेता है इसका कुछ ठिकाना नहीं। अहंकार वश लड़ते समय वह यह भी भूलजाता है कि मैं कौड़ी के लिये मुहर गमा रहा हूं।

आज शाक्य और कोलिय आपस में लड़ रहे थे। नदी के बांध के पानी का झगड़ा था। दोनों अपने अपने खेतों में पानी लेना चाहते थे और इसी बात पर एक दूसरे का खून बहा रहे थे मानों खून की कीमत पानी से कम हो।

मैंने जाकर कहा कि कोई आदमी एक घड़ा पानी लाकर तुम से खून माँगे तो तुम कितना खून दोगे।

दानों ने कहा—पानी के बदले तो कोई खून का एक भी बूंद न देगा।

मैंने कहा—तब तुम लोग पानी के लिये सैकड़ों आदमियों का खून क्यों बहा रहे हो?

दोनों दल लज्जित हुए और लड़ाई बन्द हुई।

( २४ )

विश्वसेवा का दावा करना सरल है पर विश्वसेवा करना कठिन है, भिक्षु कुटुम्ब छोड़कर जगत् की सेवा करने के लिये आते हैं पर संघ में एक छोटा सा संसार बनाकर बैठ जाते हैं और उसके बाहर कोई मरता है या जीता है इसकी पर्वाह नहीं करते। आज

बातों से मेरे शिष्य मुझे पूज्य समझते हैं। उदायी ने मेरी बातों का समर्थन किया।

[ २२ ]

विवेक हीन आदमी के हाथ में कोई भी धर्म सुरक्षित नहीं है। वह अच्छी से अच्छी बात का ऐसा दुरुपयोग कर सकता है कि प्रलय मच जाय, जीवन की जगह मौत का नाच होने लगे।

उस दिन मैंने इन्द्रियों और शरीर की गुलामी से छूटने के लिये अशुभ भावना का उपदेश दिया था और इसलिये शरीर को घृणित बतलाया था कि लोग शारीरिक विषय भोगों में फँसकर कर्तव्य न भूल जायँ। शरीर की निःसारता व घृणितता का उपदेश भी इसीलिए दिया था।

उपदेश देकर मैं पन्द्रह दिन के एकान्तवास को चला गया। वहां से जब लौटा तब मालूम हुआ कि भिक्षुओं की संख्या बहुत कम है और जब उसके कारण का पता लगाया तब तो मैं काँप उठा।

भिक्षुओं ने शरीर को घृणित समझ कर शरीर को नष्ट करना शुरु कर दिया था। बहुतों ने आत्महत्या करली थी, जो आत्महत्या नहीं कर सके उनने दूसरे भिक्षुओं से मौत माँगी और उनके हाथ से अपना बध कराया था। एक भिक्षुने तो धर्म समझ कर भिक्षुहत्या को ही अपना कर्तव्य बना लिया। तलवार लेकर वह भिक्षुओं के पास जाता था और कहता था बोलो—किसे मारूँ? जो मरना चाहता था उसी का वह सिर उड़ा देता था। इस प्रकार पन्द्रह दिन में उसने कई सौ भिक्षु मार डाले। धर्म

पत्नी थीं। कन्या-जन्म की बात सुनते ही प्रसेनजित का मुंह फीका पड़ गया, लज्जा के मारे उसकी नज़र नीची हो गई, उसको खिन्न देखकर मैंने कहा, राजन्, कन्याजन्म से इतने खिन्न क्यों होते हो, जैसे कोई पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार कोई स्त्री भी पुरुषों से श्रेष्ठ होती है, आवश्यकता दोनों की है। अगर सभी के घरों में पुत्रों का ही जन्म होने लगे, जैसा कि लोग चाहते हैं, तो एक दो पीढ़ी में दुनिया में एक भी मनुष्य न रह जाय। मनुष्य जाति की रक्षा के लिये पुत्रजन्म जितना आवश्यक है पुत्रीजन्म उससे कम आवश्यक नहीं है बल्कि अधिक ही है। पुत्री का पालन करना पुत्रके पालन करने की अपेक्षा जगत की बड़ी सेवा है। इस सेवा का अवसर मिलने से तुम्हें अप्रसन्न, खिन्न या लज्जित नहीं होना चाहिये।

( २६ )

आज राजा उदयन के पुत्र बोधि राजकुमारने अपनें नये प्रासाद में मुझे निमन्त्रित किया। भोजन के बाद उसने पूछा-भन्ते, सुख सुख से नहीं मिल सकता, सुख दुख से मिलता है।

मैंने कहा—राजकुमार, पहिले मुझे भी ऐसा मालूम होता था इसलिय मैंने सुन्दर पत्नी राजवैभव आदि का त्याग किया था। आलारकालाम के पास जाकर मैंने साधना की फिर उद्रक राजपुत्र के पास गया, वहां भी मैंने साधना की, वहां मुझे सुख न मिला, तब मैंने और भी कष्ट उठाने की ठानी, मैं गर्मी सर्दी में श्वास रोककर अनेक कष्ट सहने लगा, निराहार रहने लगा, कभी कभी सिर्फ़ दाल का पानी लेने लगा, इससे मैं कमज़ोर हो गया उठते ही गिर पड़ता

था, बाल झड़ने लगे, शरीर काला हो गया, इतना कष्ट उठाकर भी मुझे सुख न मिला, तब मुझे मालूम हुआ कि विवेकहीन अनावश्यक कष्ट सहने से सुख नहीं मिलता, सुख के लिये संयम की ज़रूरत है दुःख की नहीं। कल्याण-साधना के मार्ग में अगर दुःख आ जाय तो सहना चाहिये पर व्यर्थ ही दुःख उठाने से कल्याण नहीं होता।

मेरी बात सुनकर राजकुमार को सन्तोष हुआ और उपासक बन गया।

लोग कैसे अतिवादी हैं, कभी वे सुख के लिये दुःख के पीछे पड़ जाते हैं कभी सुख के लिये सुख के पीछे पड़ जाते हैं, भूल से उचित सुख को भी पाप समझते हैं और कभी कभी आवश्यक कष्ट को भी नहीं सहना चाहते। विवेक से काम नहीं लेना चाहते। विवेकहीन दुःख से सुख मिलता होता तो सभी पशु आदि सुखी होते। आज यही तो हुआ है। लोग सुख के लिये दुःख देखना चाहते हैं इसलिये बहुत से लोग साधु का वेष बनाकर अनावश्यक दुःख भोग रहे हैं। विवेकहीन होने से भीतरी सुख तो उन्हें मिल ही नहीं पाता और बाहरी सुख को हर हालत में पाप समझते हैं इस प्रकार धर्म के नामपर दुःख ही दुःख दिखाई देता है। इसी पाप को दूर करने के लिये मैंने मध्यम मार्ग निकाला है।

## २७ देव-दत्त

तीर्थंकर की कठिनाइयों को उसके ज़माने के लोग नहीं समझते। एक धर्म-संस्था की स्थापना करने में और उसके संचालन

में कितने अनुभव, मौलिक ज्ञान, असीम संयम, निराशा पर भी विजय करने की शक्ति, असाधारण मनोवैज्ञानिकता, निष्पक्षता और निस्वार्थता होती है उसे बहुत ही कम लोग समझ पाते हैं। बरसों की तपस्या के बाद जब कुछ सफलता मिलती है तब उसके बहुत से अनुयायी उस सफलता को ही देख पाते हैं किन्तु उसके मूल में जो असाधारण मौलिकता योग्यता और गुण छिपे रहते हैं उनकी तरफ़ उनका ध्यान नहीं जाता। वे उस सफलता की दुर्लभता न समझकर या तो नकल करने के लिये उतारू हो जाते हैं या उस सफलता को ही छीन लेना चाहते हैं। इस प्रकार ये मुफ्तखोर लुटेरे बन कर अपना पतन तो करते ही हैं साथ ही और भी सैकड़ों को ले डूबते हैं। वे चाहते तो हैं तीर्थंकरत्व और गुरुत्व, पर अपनी छोटी सी साधुता भी खो बैठते हैं, साधु संस्था को भी तहस नहस कर देते हैं।

साधुसंस्था में आकर जब साधुता नष्ट हो जाती है, मनुष्य स्वपरकल्याण के लिये नहीं किन्तु अहंकार की पूजा के लिए जब आतुर हो जाता है, तब वह संसार का भयंकर से भयंकर प्राणी हो जाता है। देवदत्त ऐसे ही भयंकर प्राणियों में से हैं। नाममोह के कारण उसका जैसा पतन हो गया है उसका मुझे पता है, और 'मुझे पता है' इस बात को वह भी समझता है। पर नाममोहान्धता से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, साधारण व्यावहारिकता की भी समझदारी उसमें नहीं है। वह यह भी नहीं समझता कि कौनसी चीज़ माँगना चाहिये, कौन सी नहीं, बहुत सी चीज़ें

मांगने मे भी दुर्लभ हो जाती हैं, मचा यश आदर पूज्यता आदि ऐसी ही चीज़ें हैं।

देवदत्त का दिनरात यही स्वप्न है कि मेरे समान पूज्यता उसे कैसे मिल जाय। मैंने जगत् को क्या दिया है और मुझे कितना त्याग करना पड़ा है इसकी तरफ़ उसका ध्यान नहीं है। एक कपूत की तरह वह बाप की कमाई जल्दी से जल्दी हड़प लेना चाहता है।

उसदिन उसने मुझसे कहा—भन्ते, आप बूढ़े हो गये हैं इसलिये आराम करें और संघ का सञ्चालक मुझे बनादें।

मैंने कहा--भाई, यह बात तो मेरे सोचने की है कि संघ का सञ्चालक किसे बनाऊं? जो संघ का संचालक हो सकेगा उसमें इतनी गम्भीरता अवश्य होगी कि वह अपने मुँह से सञ्चालकत्व न मांगे।

मेरी बात सुनकर देवदत्त क्रुद्ध और लज्जित होकर चुप हो गया। थोड़ी देर चुप रहकर बोला--भन्ते, मैं संघ का कितना ख़याल रखता हूं, हर एक आदमी पर कितनी नज़र रखता हूं इस पर आप ध्यान नहीं देते।

मैं--देखता हूं, इसीलिये संघ का भार तेरे ऊपर नहीं सौंपता। तेरा मुख्य काम यह है कि कोई भिक्षु मेरा प्रेमपात्र न बन जावे, किसी की विशेष योग्यता या श्रद्धा का मुझे पता न लग जावे। संघ का हितैषी बन कर बड़े ढंग से तूने प्रायः सभी भिक्षुओं की शिकायतें मुझे सुनाई हैं उधर बड़े ढंग से तूने भिक्षुओं के मन में

मेरे विषय में अश्रद्धा पैदा की है, इससे कितने ही लोग जो बड़ी श्रद्धा के साथ भिक्षुसंघ में शामिल हुए थे तेरी बातों से-चाल-बाज़ियों से-अश्रद्धालु होकर चले गये, गृहस्थ हो गये । मेरे रहते और तेरे हाथ में कुछ अधिकार न रहते तो संघ की तूने यह दुर्दशा कर दी है, अनेक राजाओं को तूने अश्रद्धालु बना दिया है; तुझे संघ सौंप देने पर तो संघ नष्ट ही हो जायगा। तेरी ऐसी कोई भी चाल नहीं है जो मुझ से छिपी हो, तेरी जिस चालबाज़ी का तुझे भी पता न होगा उसका मुझे पता है । तूने समझा होगा कि तूने मुझे ठग लिया है पर सच तो यह है कि तू ही ठगा गया है । अगर तुझ में यह चालबाज़ी न होती, ईमानदारी होती तो बहुत सम्भव था कि तुझे ही संघ का सञ्चालकत्व मिलता, पर तेरी ईर्ष्या ने, कृतघ्नता ने, नाममोह और यश की लूटने तुझे बर्बाद कर दिया । अभी तो तुझे भिक्षु बनने के लिये भी बहुत कुछ आत्मशुद्धि की ज़रूरत है ।

देवदत्त ने जब समझ लिया कि भगवान तो मेरे भीतर से भीतर के पर्दे की बात जानते हैं तब निराश दुःखी क्रुद्ध और शत्रु बनकर चला गया ।

वह जाकर अजातशत्रु से मिला, मेरी हत्या करने के प्रयत्न कराये पर सभी छल उसके व्यर्थ हो गये अन्त में छिपकर उसने मेरे ऊपर पहाड़ पर से पत्थर लुड़काया, वह पत्थर तो न लगा पर दूसरी शिला से टकराकर उसका टुकड़ा बड़े ज़ोर से लगा जिससे पैर लोहूलुहान हो गया । नाममोह से मनुष्य कितना नीच बन सकता है इसका उदाहरण यह देवदत्त है ।

इसके बाद उसने जो चाल चली है वह तो और भी गज़ब की है। उस दिन सभा में आकर उसने सब के सामने कहा—भन्ते, आप नियम कर दीजिये कि भिक्षु किसी का निमन्त्रण स्वीकार न करें, और सब भिक्षु जंगल में ही रहा करें और चिथड़े ही पहना करें आदि, इससे भिक्षु निःसंग वीतराग और निर्मलचरित्र रहेंगे।

देवदत्त अहंकारवश यह साबित करना चाहता है कि संघ की निर्मलता के बारे में वह मुझसे अधिक सतर्क है आर मेरेसे अधिक समझदार है। पापी मार लोगों को इसी तरह फँसाता है देवदत्त मार के चक्कर में आगया। वह मूर्ख नहीं समझता कि असंयम को जंगल और चिथड़े नहीं रोकसकते। जंगलमें भी रहने वाले भिक्षु समाज के लिये बोझा होजायेंगे। कभीकभी निमन्त्रण न स्वीकार करने से लोगों की परेशानी ही बढ़ायेंगे जैसा कि किसी किसी निगंठ साधु के द्वारा बढ़जाती है। पर देवदत्त को इन बातों से क्या मतलब, उसे तो अपना धर्मात्मापन बताना है और साबित करना है कि वह आचार्य बनने के योग्य है। अथवा अपना जुदा संघ बनाकर तीर्थंकर कहलाना है इसलिये वह मतभेद का बहाना ढूढ़ रहा है, अन्यथा वह निमन्त्रण में न जाय, या जंगलमें रहे या चिथड़े ही पहिने तो उसे कौन मना करता है? पर उसे तो अपना संघ बनाना है, मेरी कमाई लूटकर धनवान कहाना है, अपनी पूजा कराना है, अपने को तीर्थंकर घोषित करना है। पर इस प्रकार के छलों से क्या कोई तीर्थंकर बन सकता है? लोगों को धोखा देकर चार दिन कोई तीर्थंकर कहला भी जाय, पर

अन्त में तो पोल खुल ही जाती है, उसके नाममोह पर लोग थूकते ही हैं इस प्रकार वह साधारण भिक्षु भी नहीं रहता।

देवदत्त ऐसा ही पतन कर रहा है। मतभेद और धर्मात्मापन की ओट में उसने पाँचसौ अनुयायी बना लिये थे पर अन्त में सब निकल गये। अब वह अकेला रह गया है। पापी मार ने इस देवदत्त का किस बुरी तरह से शिकार किया इसका थोड़ा खेद होता है।

मनुष्य ईमानदारी छोड़कर जब स्वार्थवश दुनिया को ठगना चाहता है तब वह खुद ही किस तरह ठगा जाता है इसका उदाहरण दवेदत्त है।

## २८ महानिर्वाण

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के चले जाते ही भिक्षुसंघ सूना सूना मालूम हो रहा है। मेरा शरीर भी अब नाशोन्मुख हो गया है आज कल में मैं भी बिदा लूंगा।

आनन्द को बुलाकर मैंने सब भिक्षुओं के सामने कह तो दिया है कि मेरे चले जाने पर शास्ता का काम मेरा धर्म और विनय करेंगे, शास्त्र ही शास्ता का काम देंगे। शिष्टाचार के विनय भी साफ़ कर दिये है जिससे इन बातों को लेकर संघ में दलबंदी न हो जाये। यह भी कह दिया है कि आवश्यकता होने पर छोटे छोटे भिक्षु-नियम छोड़ दिये जाँय। नियम तो देशकाल के अनुसार बनाये जाते हैं, साधारण बाह्याचार या बाह्य नियमों पर इतना ज़ोर न देना चाहिये कि मनुष्य मनुष्य में भेद हो जाय, संघ टुकड़े टुकड़े हो जाय।

संघ बनाकर मैंने अच्छा किया या बुरा, इस पर जब विचार करता हूं तब दोनों पक्षों में कुछ न कुछ कहने को मिल जाता है पर यह साफ़ मालूम होता है कि अगर संघ न बनाया होता तो हानि अधिक हुई होती, मेरे उपदेशों से स्थायी लाभ बहुत कम ने उठाया होता, जो सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति आवश्यक थी वह न हुई होती और विशाल रूप धारण करने के लिये उसका बीज न बोया गया होता । आज एक विचार सुधार या क्रान्ति शताब्दियों तक काम करने के लिये खड़ी हो गई है ।

निःसन्देह इसमें कभी न कभी विकार आयगा पर तब तक इससे करोड़ों आदमी लाभ उठा लेंगे, समाज की काया पलट होजायगी । अन्त में तो सभी का नाश होता है इस जीवन का जैसे नाश हो रहा है उसी तरह संघ का धर्म का भी नाश होगा, समाज का भी नाश होगा । जब सभी नाशशील है तो नाश की चिन्ता क्यों की जाय ।

हां, यह बात अवश्य है कि मैं संघ-स्थापन कार्य में न पड़ा होता तो जीवन कुछ अधिक शान्तिपूर्ण रहा होता । पर इससे क्या ? थोड़े से स्वार्थ के लिये समाज के महान कल्याण की पर्वाह न करना कोई मनुष्यता नहीं है ।

आज मैं सन्तोष के साथ जा रहा हूं । जाना तो हर हालत में था ही, पर कुछ करके जा रहा हूं, जगत को कुछ ऊपर उठा कर, ऊपर उठने की-सुखी बनने की-सामग्री देकर जा रहा हूं, इससे बढ़कर इस जीवन का, इस क्षुद्र देह का क्या उपयोग हो सकता था ।

( समाप्त )

# सत्यभक्त साहित्य

जीवन की, समाज की, धर्म की और देश विदेश की प्रायः सभी समस्याओं को सुलझाने वाले मौलिक विचार। गद्यपद्य, नाटक, कथा आदि अनेक ढंग से बुद्धि और मन पर असाधारण प्रभाव डालनेवाला साहित्य।

१. सत्यामृत मानवधर्मशास्त्र [दृष्टिकांड]-१।)

अपने और जगत के जीवन को सुखी बनाने के लिये, सत्य पाने के लिये जीवन को कैसा बनाना चाहिये, जीवन कैसे और कितने तरह के होते हैं धर्म जाति आदि का समभाव कैसे व्यावहारिक बन सकता है आदि का मौलिक विवेचन विस्तार से किया गया है।

२. कृष्णगीता—मूल्य बारह आना।

श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवादरूप होने पर भी चौदह अध्याय की यह गीता भगवद्गीता से बिलकुल स्वतन्त्र है। कर्मयोग के सन्देश के साथ इस में धर्मसमभाव जातिसमभाव नरनारीसमभाव अहिंसादिव्रत, पुरुषार्थ, कर्तव्याकर्तव्यनिर्णय आदि का बड़ा अच्छा विवेचन किया गया है। विविध छन्दों और गीतों में ९५८ पद्य हैं।

३. निरतिवाद—मूल्य छः आना।

साम्यवाद और पूंजीवाद के अतिवादों से बचाकर निकाला गया बीच का मार्ग। साथ ही विश्वकी सामाजिक धार्मिक राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने की व्यावहारिक योजना।

४ सत्य संगीत—मूल्य दस आना।

म. सत्य, म. अहिंसा, राम कृष्ण महावीर बुद्ध ईसा-मुहम्मद

आदि महात्माओंकी प्रार्थनाएँ अनेक भावनागीत तथा भावपूर्ण कविताए।

५. **जैनधर्ममीमांसा** (भाग १)--मूल्य १)

तीन बड़े बड़े अध्यायोंमें धर्म की विस्तृत और मौलिक व्याख्या, महावीर स्वामी का बुद्धिसंगत विस्तृत जीवन चरित्र, अतिशयों आदि का वास्तविक मर्म, जैनधर्म और उसके सम्प्रदाय उपसम्प्रदायों का और निन्हवों का इतिहास, सम्यक्‌दर्शन के आठ अंग तथा अन्य चिन्हों का समभावी और नये दृष्टिकोण से विस्तृत वर्णन।

६. **जैनधर्ममीमांसा** (भाग २)--मूल्य १॥)

इसमें सर्वज्ञताकी वास्तविक व्याख्या, उसका इतिहास, प्रचलित मान्यताओंकी आलोचना, मति आदि पांचों ज्ञानोंका विशाल वर्णन, उनका मर्मदर्शन, संक्षेपमें ज्ञान के विषयको लेकर युक्ति और शास्त्रके आधार पर किया गया विशाल मौलिक और वैज्ञानिक अभूतपूर्व विवेचन है, कठिन से कठिन विषय बड़ी सरलता से समझाया गया है।

७. **शीलवती**--मूल्य एक आना।

वेश्याओं के जीवन में भी सतीत्व लानेवाली, उनके जीवन को ऊंचे उठानेवाली एक योजना जो कि एक वेश्याकुमारी के साथ चर्चारूप में बताई गई है।

८. **विवाह-पद्धति**--मूल्य एक आना।

सप्तपदी, भाँवर, मंगलाष्टक मंगलाचरण आदि के सुन्दर पद्य सबको समझ में आनेवाली एक नयी विवाह पद्धति. इस पद्धति से अनेक विवाह हुए हैं आर विरोधी दर्शकों ने भी इसकी सराहना की है। पूरी विधि हिन्दी में ही है।

९. सत्यसमाज और प्रार्थना--मूल्य एक आना।

प्रतिदिन सुबह शाम पढ़ने योग्य प्रार्थनाएँ, सत्यसमाज के विषय में शंका-समाधान और नियमावली।

१०. नागयज्ञ (नाटक)--मूल्य आठ आना।

भारत के आर्य और नागों का परस्पर द्वंद और अन्त में दोनों का मेल; एक ऐतिहासिक कथानकको लेकर अनेक रसपूर्ण चित्रण के द्वारा सांस्कृतिक एकता का उपाय बताया गया है।

एक लम्बी प्रस्तावना में हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों का कारण और उनको दूर करने का उपाय भी बताया गया है।

११. हिन्दूमुस्लिम-मेल--मूल्य डेढ़ आना।

हिन्दू मुसलमानों में जिन जिन बातोंपर झगड़ा है उनका मर्म क्या है और किस तरह दोनों की भलाई हो सकती है दोनों की धार्मिक सामाजिक और राजनैतिक समस्या किस तरह सुलझ सकती है—इसका अच्छा विवेचन है। यह पुस्तक घर घर पहुँचना चाहिये।

१२ आत्म कथा--मूल्य सवा रुपया।

सत्यसमाज के संस्थापक श्री० सत्यभक्तजी की विस्तृत आत्मकथा जिसे पढ़ने से जीवन की कितनी ही कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं और जीवन निर्माण की कुञ्जी मिल सकती है।

१३. हिंदू मुस्लिम इत्तहाद (उर्दू अनुवाद)।

यह श्री. सत्यभक्तजी की 'हिन्दू-मुसलिम मेल' पुस्तक का उर्दू अनुवाद है, हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर आपने सत्यसन्देश में भी कुछ विचार प्रकट किए थे उनका भी समावेश इस अनुवाद में किया गया है। हर उर्दूदाँ को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए।

१४ बुद्ध हृदय--मूल्य छः आना। इस पुस्तक में महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं को लेकर उनके मनका ऐसा सुन्दर और

स्वाभाविक चित्रण किया है मानों यह पुस्तक महात्मा बुद्ध की डायरी का ही अंश हो। पुस्तक बहुत ही रोचक और पठनीय है।

निम्नलिखित ग्रंथ छप रहे हैं:—

१५. सत्यामृत (आचार—कांड)--मूल्य क़रीब १॥)

अहिंसा सत्य आदि का मौलिक और विस्तारपूर्ण विवेचन, आचार सम्बन्धी प्रायः सभी बातों का विवेचन करनेवाला एक मौलिक महाशास्त्र।

१६. जैनधर्ममीमांसा (भाग ३)-मूल्य क़रीब १॥)

इसमें सम्यक् चारित्रका, साधु संस्था के नियमों का, उसके आधुनिक रूप का गुणस्थान आदि का नयी दृष्टिसे विवेचन किया गया है।

१७ हिंदू-मुस्लिम-यूनिटी (अंग्रेजी) लेखक रघुवीरशरण दिवाकर बी. ए ऐल-ऐल. बी.। श्री. सत्यभक्तजी के हिंदू-मुस्लिम समस्या सम्बन्धी विचारों को अपने ढंग से दर्शाते हुए लेखक ने इस पुस्तक में उक्त समस्या पर विचार किया है।

१८ अनमोल पत्र-श्री. सत्यभक्तजी के समय समय पर दिए गए पत्रों का सर्वोपयोगी और मौलिक भावों से परिपूर्ण संग्रह।

१९ सुलझी हुई गुत्थियाँ-विभिन्न जटिल समस्याओं को सुलझाने का अत्यन्त सुन्दर सरल और व्यावहारिक उपाय यहाँ मिलेगा।

२०-कुरान की झाँकी-इसे कुरान का सार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

---

मिलने का पता—

—सत्याश्रम, वर्धा

[ ये पुस्तकें हिंदी-ग्रन्थ रत्नाकर, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई से भी मिलेंगी। ]